पहला सस्करण ■ १९७३ ■ मूल्य : पाच रुपये
मेरी प्रिय कहानिया ■ कहानी-सकलन
लेखक ■ महीप सिंह ©
प्रकाशक ■ राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
मुद्रक ■ शब्दाकन, द्वारा आर० पी० प्रिटर्स, शाहदरा-दिल्ली

भूमिका

लिखना मैंने बहुत पहले शुरु किया था सन् १९५० के आस-पास। पर कहानियां लिखना मैंने १९५६ से शुरू किया। '५० और' ५६ के बीच मैं क्या लिखता रहा, यह आज मुझे अच्छी तरह याद नही है। १९५४ मे कानपुर के डी० ए० वी० कॉलेज से एम० ए० करने के एक वर्ष बाद मैं बम्बई के खालसा कॉलिज मे हिन्दी का प्राध्यापक नियुक्त हो गया। अपने विद्यार्थी-जीवन मे ही मैं लेखक के रूप मे जाना जाने लगा था, पर मेरा सब कुछ—सोचना, लिखना, जीना—एक विचित्र से व्यामोहपूर्ण आदर्शमयी दायरे मे बधा हुआ था। मैं बम्बई न गया होता तो कभी उस दायरे से मुक्त न हो पाता।

प्रारम्भ मे बम्बई मे खार के एवरग्रीन होटल मे मैं कुछ महीने रहा। उसी होटल के एक कमरे मे 'मैडम' रहती थी। वह एक ऊची-लम्बी आकर्षक औरत थी और किसी सेठ की रखेल थी। उसने मुझे एक तरह से मेरी पहली कहानी मैडम लिखने के लिए प्रेरित किया जो बाद मे 'सरिता' मे प्रकाशित हुई। उन्ही दिनो मैंने एक और कहानी लिखी उलझन। साप्ताहिक हिन्दुस्तान के किसी अक मे प्रेमचन्द कहानी प्रतियोगिता की सूचना पढकर मैंने उसे उस प्रतियोगिता के लिए भेज दिया और भेजकर लगभग भूल-सा गया। दिवाली की छुट्टी मनाने मैं कानपुर आया था कि एकाएक २१ अक्टूबर, १९५६ के साप्ताहिक हिन्दुस्तान के अक मे अपनी कहानी प्रथम पुरस्कृत कहानी के रूप मे देखकर आश्चर्य भी हुआ और खुशी भी हुई।

इन दो कहानियो के प्रकाशन के बाद मुझे एकाएक महसूस हुआ कि मैं कहानी-लेखक हू। साथ ही यह एहसास भी बढा कि मैं और जो कुछ भी हू—बाद मे हू। अगले साल मैंने वेतन के पैसे, एक्स्ट्रा और पडोसी जैसी कहानिया लिखी जो सरिता, माया और धर्मयुग मे प्रकाशित हुई। उसके अगले साल शास्त्रीजी, लिफ्ट और सुबह के फूल कहानिया लिखी।

प्रारम्भिक दौर की मेरी १४ कहानियो का सग्रह सुबह के फूल सन् १९५९ मे प्रकाशित हुआ।

प्रारम्भिक दौर मे दो कहानिया लिखने के वाद कहानी लिखना मुझे आसान लगने लगा था। मैं कहानी लिखने वैठता तो कभी एक ही वैठक मे तो कभी-कभी दो वैठको मे कहानी पूरी कर लेता। अक्सर कागज़ के नीचे कार्वन रखकर कहानी लिखता और पहली प्रति किसी पत्रिका को भेज देता। पर धीरे-धीरे कहानी लिखना मेरे लिए कठिन से कठिनतर वनता चला गया।

अपने कहानी लेखन के दूसरे दौर की शुरुआत मैं काला वाप गोरा वाप से मानता हू। यह कहानी अक्टूबर '६१ की सारिका मे प्रकाशित हुई थी और मेरे सभी मित्रो के वीच काफी प्रशसा की पात्र वनी थी। आज भी यह कहानी मुझे अच्छी लगती है और पजावी मे मेरा प्रकाशित कहानी-सग्रह इसी कहानी के नाम से है। मुझे ऐसा लगता है कि इस कहानी मे मैंने कथ्य और शिल्प दोनो ही स्तरो पर अपनी पहले की कहानियो से अपसरण किया। कानपुर छोडने के कुछ वर्षो वाद तक मुझे अनेक व्यामोह घेरे रहे थे, उनमे कहानियो मे भी सस्कृतनिष्ठ हिन्दी के प्रयोग का मोह भी था। इस कहानी द्वारा मैं अपने-आपको कहानी की सहज और जीवन्त भाषा के निकट भी ला सका। इसी दौर की मेरी अन्य प्रिय कहानिया है, ठडक, **पानी और पुल और झूठ**।

इस समय तक कहानिया लिखते मुझे पाच-छह वर्ष हो चुके थे। चालीस के लगभग मैं कहानिया लिख चुका था। एक सग्रह भी प्रकाशित हो चुका था, परन्तु फिर भी मुझे लग रहा था कि मैं हिन्दी कहानी-ससार से वहुत दूर हू। उन दिनो ९ गतिविधियो का एकमात्र केन्द्र इलाहावाद था। प्रकाशको और पत्रि- ो का केन्द्र भी इलाहावाद था। कहानी का वृहत् विशेषाक इलाहावाद से था। नई कहानिया की शुरुआत भी हो चुकी थी और कहानी की कितनी वौद्धिक चर्चाओ की प्रत्येक अनुगूज उसी केन्द्र से प्रसारित हो रही थी। मैं इलाहावाद गया ही नही था और कहानी या नई कहानियां मे कहानी प्रकाशित होने की 'भैरवी कृपा' से मैं पूरी तरह वचित था।

इन्ही दिनो (१९६३ मे) मुझे वम्वई छोडना पडा। 'पड़ा' इसलिए कि वम्वई से मुझे वडा मोह हो गया था और आसानी से मैं वम्वई त्यागने को तैयार नही था। परन्तु अपने कॉलेज की प्रवन्ध-समिति की अशैक्षणिक नीतियो को, जिनका मैं

माल-भर से काफी मुखर होकर विरोध करता चला आ रहा था, और सहन करना मेरे लिए अत्यन्त दूभर हो गया था।

दिल्ली ने मेरे कथा-लेखन को एक नई शुरुआत दी। बम्बई तक मैं सिर्फ कहानिया लिखता था, परन्तु दिल्ली आकर कहानी को लेखन, चर्चा, वाद-विवाद आदि सभी स्तरो पर जीने के लिए मैं तत्पर हुआ। इन्ही दिनो हमने कहानी मे सचेतन दृष्टि की चर्चा शुरू की।

नवम्बर १९६४ मे मेरे द्वारा सपादित आधार का सचेतन कहानी विशेषाक प्रकाशित हुआ था। सचेतनता को मैंने जीवन-दृष्टि के स्तर पर सोचा, विचारा और व्याख्यायित किया था। यह बात अलग है कि मेरे अनेक साथी उसे अपने चर्चित होने और तथाकथित विरोधियो को जी भरकर कोसने के स्तर से अधिक उन्नत स्तर पर ग्रहण करने मे असमर्थ रहे।

उन्ही दिनो मेरा दूसरा कहानी-सग्रह उजाले के उल्लू प्रकाशित हुआ। ब्लाटिंग पेपर, स्वराघात, उजाले के उल्लू और लकीरो वाला मकान जैसी कहानिया इन्ही वर्षो ('६३-'६४) मे लिखी गई, जिन्हे मैं अपनी कथा-यात्रा के उल्लेखनीय पडावो के रूप मे स्वीकार करता हू।

यह भी विचित्र है कि हर पडाव के बाद मुझे आगे की कहानी लिखना और कठिन लगता गया है और वर्ष मे लिखी गई कहानियो की सख्या घटती चली गई है। मेरा तीसरा सग्रह घिराव भी चार वर्ष के अतराल (सन् १९६८) मे प्रकाशित हुआ और चौथा सग्रह कुछ और कितना भी लगभग उसी अतर से प्रकाशित हुआ है। घिराव की कहानियो मे कील, पारदर्शक और फोकस तथा कुछ और कितना की शोर, नींद, कीचड और प्याले जैसी कहानिया मेरी कथा-यात्रा के सकेत-बिंदु के रूप मे प्रस्तुत की जा सकती हैं।

कुछ बाते अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे मे भी कहना चाहूगा।

लिखना मेरे लिए एक अजीब तरह की यातना है—एक ऐसी यातना जो मुझे सदा पीडित किए रहती है। मुझे लगता है कि मैं सदा अशान्त रहता हू। जब नही लिखता हू तो अशान्त होता हू। जब लिख रहा होता हू तो लगता है उस अशान्ति को धीरे-धीरे पी रहा हू या ऐसा लगता है कि अदर की दबी हुई अशान्ति उफन आई है और उसने मुझे चारो ओर से घेर लिया है। बस कुछ क्षण ऐसे होते हैं जब ऐसा लगता है कि गहरी अशान्ति की नदी मे नहाकर मैं बाहर निकल

आया हू, किनारे पर खडा होकर ठडी हवा के झोके महसूस कर रहा हू, अंदर की सारी उलझन कही तिरोहित हो गई है और चारो तरफ कुछ वडा सुखद-सा, वडा हल्का-सा वातावरण विखर गया है। ये क्षण तव आते हैं जव मैं कुछ लिख चुका होता हू।

परन्तु ये क्षण वहुत थोडे होते हैं। कुछ समय वाद मैं अनुभव करता हूं कि कही रुका हुआ अशान्ति का सैलाव फिर उमड आया है और मैं फिर किसी अनजानी यातना से पीडित हो उठा हू।

मैं लिक्खाड लेखको मे नही हू। अव तो वर्ष-भर मे चार-पाच कहानिया लिख जाए तो वहुत वडी वात होती है। परन्तु कहानी या कहानिया हैं कि सदा मुझे घेरे रहती है। उनकी गिरफ्त से मैं उस समय भी मुक्त नही हो पाता जव रात को मैं विस्तर पर गिरता हू और जल्दी ही नीद की गहराइयो मे उतर जाता हू।

कुछ कहानिया मेरे अन्दर वडी तेज़ी से आती हैं और उतनी ही तेज़ी से लिख भी ली जाती है। कुछ कहानिया तेज़ी से आती हैं पर इतनी चिकनी होती हैं कि मैं उन्हे पकडने की कोशिश करता हू और वे लगातार फिसलती रहती हैं। कई वार पकडने और फिसलने का क्रम महीनो-वर्षों चलता रहता है और एक कहानी एक वार, दो वार, तीन वार लिखी जाकर भी मुझे सतोष नही देती और लम्वे समय तक वह मेरी मेज की दराज मे पडी सिसकती रहती है।

मेरी ऐसी कहानिया वहुत थोडी हैं जिन्हे मैंने एक ही सिटिंग मे लिख लिया। वहुधा एक कहानी दो-तीन सिटिंग मे पूरी होती है। लिखकर उसके प्रति होने के लिए मैं उस पहले ड्राफ्ट को एकाध सप्ताह के लिए मेज की दराज ल देता हू। कुछ दिन वाद पढता हू तो अक्सर कुछ काट-छाट की ज़रूरत होती है। यह काट-छाट भी तीन-चार वार होती है, तव कही वह टाइप जा पाती है।

ऐसा भी हुआ है कि मुझे अपनी कुछ कहानियो को दो-दो, तीन-तीन वार पडा है और इस तरह पहले और अतिम ड्राफ्ट के वीच साल-दो साल का आ गया है। और ऐसा भी नही है, जो कहानी आज कही प्रकाशित हो गई उसका अन्तिम रूप हो। अपनी कई कहानियो को पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने और चर्चित होने के वाद भी मैंने काटा-छाटा है या उन्हे दुवारा विल्कुल

नये कोण से लिखा है। इसके साथ ही कुछ कहानिया ऐसी भी हैं जिन्हे मैंने पन्द्रह साल पहले लिखा था। वे मुझे आज भी अच्छी लगती हैं और उनमे कही एक शब्द के परिवर्तन की आवश्यकता नही अनुभव होती है।

बहुधा लोग कहते हैं कि मेरी कहानियो की विषय-वस्तु मे बहुत विविधता नही होती और उनके सूत्र मेरे बहुत निकट के आत्मीय प्रसगो से जुड़े होते हैं। यह अजीब बात है कि कुछ लोग मुझसे यह बात शिकायत के रूप मे कहते हैं। परन्तु मैं इन्ही बातो को अपनी कहानियो के वैशिष्ट्य के रूप मे ग्रहण करता हू। जीवन के किसी भी क्षेत्र मे बहुत अधिक विविधता मे मेरी रुचि नही है। अलग-अलग स्थूल रगो की अपेक्षा मुझे एक-दो रगो के थोडी-थोडी भिन्नता रखने वाले शेड्स ज्यादा अच्छे लगते है।

अपनी कहानियो मे मैं इन्ही शेड्स को पकडने की कोशिश करता हू।

एच-१०८, शिवाजी पार्क

नई दिल्ली-२६

—महीपसिंह

क्रम

उलझन	१३
पानी और पुल	२२
काला बाप गोरा बाप	२६
उजाले के उल्लू	३६
स्वराघात	४६
लकीरों वाला मकान	५३
कछुए	६०
पुत्र	६८
कील	७५
ब्लाटिंग पेपर	८२
ठडक	९१
पारदर्शक	९७
फोकस	१०५
घिराव	११४
कीचड	१२१
प्याले	१२६
घिरे हुए क्षण	१३३
शोर	१४१

कॉलेज से आते ही प्रोफेसर महेन्द्रसिह ने अपना कोट और टाई उतारकर पलग पर फेंक दी। पप्पी पलग पर सोई हुई थी और सुरजीत कौर पास ही स्टोव पे बैठी खाना गर्म कर रही थी। "आ गए, हाय! अभी पगडी न उतारिएगा," वह वही बैठी-बैठी चिल्लाई, "दो मिनट बैठकर सास ले लीजिए। बाहर से गर्म-गर्म आते है और आते ही पगडी उतार देते है, सिर मे सीधी हवा लगती है और फिर जुकाम हो जाता है। कितनी बार कहा, मेरी तो कोई सुनता ही नही।"

महेन्द्रसिह अब तक पगडी उतारकर मेज पर रख चुके थे और शीशे के सामने खडे अपने केशो पर कघा फेर रहे थे। सुरजीत कौर ने खाना मेज पर लगा दिया और कोट और टाई को हैंगर पर टागते हुए झुझलाए स्वर मे कहा, "इतना भी नही होता कि आकर अपने कपडे तो हैंगर पर टाग दे। बस, पलग पर फेंक दिया। क्रीज खराब हो जाती तो कल कॉलेज पहनकर क्या जाते?"

महेन्द्रसिह कुछ बोले नही, मुस्करा-भर दिए और तौलिए से अपने हाथ पोछते हुए खाने की मेज पर बैठ गए। पानी के गिलास भरकर सुरजीत भी बैठने को ही थी कि पलग पर पतले दुपट्टे के अन्दर लेटी हुई पप्पी थोडी-सी कसमसाई।

"और मुसीबत।" कहती हुई सुरजीत झट से पलग की ओर बढी और उसे सुलाने के लिए थपकिया देने लगी।

"अब आओ भी न।" महेन्द्रसिह चम्मच से सब्जी का रस पीते हुए बोले, "दो बज रहे है और मुझे बडे जोर से भूख लग रही है। तुम यह क्या ले बैठी?"

"भूख क्या मुझे नही लगी है?" सुरजीत जरा झुझलाकर बोली, "पप्पी जाग जाएगी तो दोनो का खाना हराम हो जाएगा—आप शुरू कीजिए।"

किन्तु पप्पी को सुलाने के सभी प्रयत्न असफल रहे और आखिर उसे साथ लेकर बैठना पडा। उसने प्लेट से रोटिया निकालकर नीचे फेंक दी, सब्ज़ी की कटोरी को मेज़ पर उलट दिया। महेन्द्रसिह 'अरे अरे' करते रहे, सुरजीत

खीझती-झुंझलाती रही और दोनो किसी प्रकार खाते रहे।

महेन्द्रसिंह को कॉलेज मे प्राध्यापक हुए दो वर्ष ही हुए हैं। अपने घर से काफी दूर बम्बई जैसे नगर मे उन्हे नौकरी मिली है। पहले वर्ष तो वह अकेले एक होटल मे रहते रहे क्योकि लगातार प्रयत्न करते रहने पर भी उन्हे रहने योग्य कोई उचित स्थान नही मिल सका। दूसरे वर्ष बडी चेष्टा करने पर उन्हे अपने कॉलेज से लगभग दस मील दूर एक खोली मिली। अर्थात् एक कमरा जिसमे लकडी का पर्दा लगाकर एक रसोई बनाई गई थी। महेन्द्रसिंह का बस चलता तो ऐसे मकान की ओर आख उठाकर भी नही देखते किन्तु वह अनुभव कर चुके थे कि उनके ऐसे वेतन पाने वाले व्यक्ति को बम्बई ऐसे नगर मे इससे अच्छे स्थान की आशा नही करनी चाहिए।

खाना खाकर महेन्द्रसिंह पलग पर लेट गए और एक पत्रिका के पन्ने उलटने लगे। सुरजीत ने पप्पी को उनके पास बैठा दिया और स्वय जूठे बर्तनो को समेटने मे लग गई। महेन्द्रसिंह कई बार कह चुके थे कि क्यो न एक नौकर रख लिया जाए जो बर्तन माजने, कपडे धोने और पप्पी को खिलाने मे मदद कर दिया करे। किन्तु सुरजीत सदा यही कहकर टालती रही कि जो तनख्वाह मिलती है उसमे बम्बई जैसे नगर मे नौकर रखने की गजाइश कैसे हो सकती है? आखिर दस-बीस पीछे भी तो डालने चाहिए। समय-कुसमय मे पास मे कुछ न होगा तब किसके सामने हाथ फैलाएगे? महेन्द्रसिंह इस तर्क पर चुप हो जाते। फिलहाल पद्रह रुपये महीने पर एक बाई काम करती थी जो दोनो समय बर्तन माज जाती और कमरे मे झाडू-टका कर जाती।

सुबह महेन्द्रसिंह की नीद खुली तो उन्होने देखा कि सुरजीत नहाई-धोई रसोई ठी स्टोव जला रही है। वह पलग से उठकर कुर्सी पर बैठ गए और बोले, "एक पानी देना।" सुरजीत ने चाय का पानी स्टोव पर चढा दिया था। उसने र एक गिलास बासी पानी, जो उनकी नित्य प्रात पीने की आदत थी उनके रख दिया और कहा, "जल्दी नहा-धो आइए, काफी देर हो गई है।' महेन्द्र-ने पानी पीकर मेज पर रखी टाइमपीस की ओर देखा। साढे छ बजने वाले थे। उन्होने दैनिक पत्र उठाया और उसकी मोटी-मोटी सुर्खिया देखने लगे। सुरजीत ने रसोई मे से ही कहा, 'चाय तैयार है। फिर कॉलेज को देर हो जाए तो मुझे न कहिएगा।" महेन्द्रसिंह जमुहाई लेते हुए उठे और इधर-उधर देखते हुए

बोले, "तौलिया कहा है ?"

"तार पर नही टगा है क्या ?"

उन्होने कमरे मे आर-पार वधे हुए तार पर दृष्टि डाली और उसपर से तौलिया उतार लिया। फिर उन्होंने कमरे के एक कोने के आले से साबुनदानी और पेस्ट उठाया पर देखा कि वहा ब्रश नही है।

"मेरा ब्रश कहा है ?" वह जोर से चिल्लाए।

"वहा आले मे नही है ?" सुरजीत ने रसोई मे ही बैठे-बैठे उत्तर दिया।

"यहां तो कही नही।"

"वही कही इधर-उधर होगा। देखिए न।"

महेन्द्रसिह ने इधर-उधर देखा किन्तु उन्हे कही दिखाई न दिया। बोले, "आओ, जरा ढूढ दो। मुझे तो नही मिलता।"

इधर पप्पी भी जाग गई। सुरजीत ने उसे पलग से उठाया और उनकी गोद मे देते हुए कहा, "पकडिए, मैं देखू।" महेन्द्रसिह ने पप्पी को ले लिया, वह अपने छोटे-से हाथ से उनके मुह की ओर ताकती हुई उनकी लम्बी नाक को पकडने की कोशिश कर रही थी और महेन्द्रसिह वुत वने खडे थे।

"यह लीजिए।" सुरजीत ने ब्रश उनके हाथ मे देते हुए कहा, "उस कोने मे पडा था। मगर यह नही हुआ कि ज़रा कमर झुकाकर ढूढ लें। एक आदमी तो खाली आपके कामो के लिए होना चाहिए।"

महेन्द्रसिह हस दिए, वोले, "तुम्हारे सामने तो सचमुच मेरी सारी चलत-फिरत मारी जाती है। पता नही पिछला साल कैसे कट गया। अव तो तुम्हारे विना मुझसे तिल-भर भी करते-धरते नही वनता। देखो न, ज़रा-ज़रा-सी वात के लिए तुम्हारे सहारे पडा रहता हू।"

सुरजीत जव कभी महेन्द्रसिह के मुख से इस प्रकार के शब्द सुनती उसे एक प्रकार का आत्मिक आनन्द मिलता। यह अनुभूति उसे एक अजीव-सा सुख देती कि कोई उसपर इतना आश्रित है कि अपनी छोटी से छोटी वात के लिए उसपर निर्भर रहता है। फिर भी वह नाराज़गी-भरे स्वर मे बोली, "अच्छा जाइए और जल्दी निपटिए। ऐसा भी क्या आलस ?"

महेन्द्रसिह सचमुच वडे आलसी थे—या यो कहिए कि अव हो गए थे। सुवह उठते ही चिल्लाना शुरु कर देते थे—पानी, तौलिया, ब्रश, पेस्ट। नहाने जाते

समय जब कच्छा मल जाते तब या तो सुरजीत स्मरण कराती या फिर गुसलखाने से कच्छे के लिए पुकार आती और सुरजीत को रसोई घर मे जलते हुए स्टोव और उबलते हुए दूध को वैसे ही छोडकर भागना पडता। आगे बढते हुए प्रत्येक क़दम पर वह पीछे घूमकर देखती जाती कि इस बीच कही पप्पी रसोई घर मे घुसकर सब उलट-पलट न कर दे। महेन्द्रसिंह जब नहाकर आते तब उन्हे दाढी फिक्स करने के लिए एक कटोरी पानी, धुला हुआ ठाठा (दाढी पर बाधने वाला कपडा) और काला धागा तैयार मिलता। ऐसे समय जब कभी पप्पी आकर उनसे उलझने लगती तब वह चिल्ला उठते, "अरे इसे पकडो, नही तो फिक्सो की शीशी उलट डालेगी।"

और तब सुरजीत रसोई से ही आवाजे देना शुरू करती या फिर पकडने के लिए स्वय आती।

उस दिन महेन्द्रसिंह कॉलेज जाने के लिए तैयार हो रहे थे। पगडी बाध चुके थे, कपडे पहन चुके थे, बूट पहनने लगे तो देखा कि उसमे पडे हुए मोजे गन्दे हैं। उन्होने इधर-उधर देखा, सुरजीत कही पास दिखाई नही दी। दूसरे मोजे ढूढने के लिए दो-तीन सन्दूको के कपडे इधर-उधर पलट डाले किन्तु सब बेकार। वह खडे-खडे झुझला ही रहे थे कि सुरजीत हाथ मे कुछ धुले हुए गीले कपडे लिए वहा आ गई।

"अरे! क्या खोज रहे हैं आप?" सन्दूको के उलटे-पुलटे कपडो को देखकर उसने पूछा।

"तुम कहा गई थी? मुझे मोजे चाहिए। सब देख डाला पर कही नही ले।"

"गुसलखाने मे पप्पी के दो फ्रॉक ही तो धोने गई थी। इतनी देर में मानो य आ गई।" कहती हुई उसने उखडे हुए एक सन्दूक के कोने से मोजे निकालकर हाथ मे दे दिए। फिर कहा, "जरा ध्यान से देखते तो वही मिल जाते। मगर पको तो खाली उलट-पलट करना आता है। मारे कपडो की तह खराब करके रख दी।"

देर हो जाने की आशका से महेन्द्रसिंह वैसे ही खीझे हुए थे, सुरजीत की इस बात से उनका पारा और चढ गया। बडे गम्भीर स्वर मे बोले, "देखो, जब तक मैं कॉलेज चला न जाया करू तब तक तुम एक क्षण के लिए भी मेरे सामने से न हटा

करो। तुम्हे मालूम तो है कि तुम्हारे विना जरा-सी देर के लिए भी, एक क्षण के लिए भी मेरा काम नही चलता।"

महेन्द्रसिह के इस क्रोध मे भी सुरजीत को हसी आ गई, बोली, "जब मै नही आई थी तब आपका काम कैसे चलता था ?"

"तब मे अपना सब काम स्वय कर लेता था। तुम्हीने तो मेरी आदतें बिगाड दी है।"

कभी-कभी सुरजीत घर के काम-काज से बहुत खीझ जाती थी। पप्पी जब से बम्बई आई थी, पहले दिन से ही उसे यहा के दूध से ऐसी अरुचि हो गई थी कि एक बार मे पाच औस पी जानेवाली वह लडकी अब दूध की बोतल को मुह नही लगाती थी। महेन्द्रसिह ने डिब्बे का दूध लाकर दिया किन्तु उसे वह भी नही भाया। इसलिए अब वह अधिकतर मा के दूध पर रहने लगी थी और दिन मे एक क्षण के लिए भी सुरजीत का पिंड नही छोडती थी। महेन्द्रसिह जितनी देर भी घर पर रहते या तो कुछ पढते रहते या लिखते रहते। जब कभी सुरजीत तग आकर पप्पी को उनके हाथ मे पकडा जाती वह उसे पाच मिनट से अधिक नही टिका पाते। या तो वह उनकी पुस्तको के पन्ने नोचने शुरु कर देती या फिर रोने लगती और महेन्द्रसिह झुझलाकर किसी काम मे लगी सुरजात के पास उसे बैठा आते। वह झट मा का कधा पकडकर खडी हो जाती और उसकी गोद मे पहुचने का प्रयत्न करने लगती।

उस दिन महेन्द्रसिह जब कॉलेज से लौटे तब सुरजीत बहुत झुझलाई और परेशान बैठी थी। पप्पी उसकी गोद मे पडी दूध पी रही थी। आज उसने उसे बहुत परेशान किया था। खाना बनाते समय वह बार-बार रसोईघर मे घुस आती और सुरजीत की पीठ का सहारा लेकर उधम मचाने लगती। एक बार वह बगल से होकर जलते हुए स्टोव के पास पहुच गई। सुरजीत चमचे से सब्जी हिला रही थी। पप्पी का हाथ जलते हुए स्टोव पर पडने ही वाला था कि उसने देख लिया और वह हडबडाकर उसे पकडने के लिए लपकी। पप्पी का हाथ जलने से तो बच गया। किन्तु हडबडाहट मे सुरजीत की कोहनी स्टोव पर रखे बर्तन से लगी और वह उलटकर नीचे आ गिरा। सारी सब्जी फर्श पर बिखर गई। सुरजीत के कपडे पीले हो गए। दो-चार छीटे पप्पी पर आ पडे और वह जोर-जोर से रोने लगी। फर्श पर पडी हुई सब्जी के रसे मे सने हुए कपडो और पप्पी की

चीखो ने उसे एक साथ पागल बना दिया। किसी प्रकार उसने अपने कपड़े बदले, पप्पी के बदन पर जहा छींटे पडे थे वहा नीली रोशनाई लगाई और फिर उसे चुप कराने के लिए वह दूध पिलाने लगी। इस घटना ने उसे इतना भ्रमित कर दिया कि उसे इस बात का ध्यान ही न रहा कि महेन्द्रसिंह के आने का समय हो गया है और उनके लिए अब तक कुछ खाना बना लेना चाहिए था।

महेन्द्रसिंह ने आते हुए अपनी आदत के अनुसार कोट और टाई उतारकर पलग पर डाल दी और कमीज उतारते हुए बोले

"जल्दी खाना लगाओ, भूख अपना जोर दिखा रही है।"

सुरजीत जैसे नींद से जागी। उसने पप्पी की ओर देखा। वह दूध पीती-पीती गोद मे ही सो गई थी। उसे पलग पर लिटाते हुए सुरजीत ने कहा, "आज खाने मे कुछ देर है। अभी बन नही पाया है।"

"अभी बन नही पाया है ? क्यो ?" महेन्द्रसिंह ने जरा तीखे स्वर मे पूछा "मुझे तो भूख बडे जोर से लग रही है।"

"अभी बना जाता है।" के अतिरिक्त सुरजीत ने और कुछ नही कहा। एक गुबार-सा उसके हृदय मे भरा हुआ था, जिसपर उसके मौन ने आवरण डाल रखा था। वह जैसे ही रसोईघर मे जाने को हुई, पप्पी जागकर रोने लगी। शायद उसकी जलन की पीडा उसे सोने नही दे रही थी। सुरजीत ने पप्पी की ओर देखा और फिर महेन्द्रसिंह की ओर कुछ तीखी दृष्टि से देखते हुए कहा, "आप जरा इसे उठा लीजिए।"

एक तो महेन्द्रसिंह वैसे ही पप्पी को बहुत कम लेते थे और अक्सर सुरजीत को उसे अपनी गोद मे लिए ही खाना बनाना पडता था। पर आज तो महेन्द्रसिंह की मन.स्थिति भी ठीक नही थी। कुर्सी पर बैठे और एक पत्रिका के पन्ने उलटते हुए वे बिगडकर बोले, "ना बाबा, यह काम मुझसे नही होगा।"

पप्पी तथा घरेलू कार्यो के प्रति महेन्द्रसिंह के ये उद्‌गार सुरजीत के लिए नये नही थे। किन्तु आज के उनके इन शब्दो ने उसे वह ठेस पहुचाई कि उसका अन्तर तिलमिला उठा। अदर से कुछ मानो अब फटकर बाहर निकल आना चाहता था। उसके नेत्र डबडबा आए और उसके मुख से कुछ अस्फुट शब्दों के निकलते न निकलते आसुओ की धारा बह चली। पप्पी को पलग से उठाते हुए उसने कहा, "आप इसे नही लेंगे तो आज मुझसे खाना नही बन सकेगा।"

महेन्द्रसिंह ने मूक दृष्टि से सुरजीत की ओर देखा। वह अपनी आखे पोछती हुई कह रही थी, "आप पुरुष लोग यह समझते है कि जीविका कमाने के लिए आप तो मेहनत करते है और ये स्त्रिया घर मे बेकार बैठी रोटिया तोडती है। इसलिए घर-गिरस्ती का और अपना जितना भी बोझ इनपर डाला जाए उतना ही ठीक। किन्तु हम औरते घर मे अपना दिन किस तरह गुजारती है यह हमे ही पता है। आपकी नौकरी तो कुछ घटो की होती है किन्तु हम चौबीस घटे के नौकर है और ऐसे नौकर कि जिनके काम को काम नही समझा जाता। आप अपने मालिको से दया और सहानुभूति की आशा रखते है किन्तु हमपर आप शायद भूलकर भी दया दिखाना नही चाहते। आज मेरा जरा-सा ध्यान चूक जाता तो पप्पी स्टोव से जल जाती और पता नही कितनी मुसीबते उठानी पडती। इसको बचाने मे भागी तो मैं जमीन पर गिर गई। मेरे कपडे खराब हो गए और इसपर भी कई जगह गरम छींटे पड गए तब से यह लगातार रो रही है।"

महेन्द्रसिंह ने खेद और उत्सुकता मिली दृष्टि से पप्पी की ओर देखा। उसकी बाहो पर दो-तीन जगह नीली दवा लगी हुई थी। महेन्द्रसिंह क्रोध से उबल पडे और बोले, "मैंने तुमसे कई दफा कहा कि एक नौकर रख लो। लेकिन तुम हो कि मेरी बात सुनती ही नही।"

वह बोली, "मुझे क्या नौकर से कोई चिढ है? अगर मैं यह खर्च बचाना चाहती हू तो क्या अपने लिए? कल अगर हमारे पास दो-चार पैसे न हुए तो आपके माता-पिता आपको नही, मुझे दोष देंगे कि इसने समय-कुसमय के लिए चार पैसे भी बचाकर नही रखे।"

सुरजीत ने देखा, पप्पी उसके कधे पर सिर रखे सो गई है। उसने उसे धीरे से पलग पर लिटा दिया और अपना मुह पोछती हुई रसोई मे चली गई।

महेन्द्रसिंह की दृष्टि तो पत्रिका के पृष्ठो पर लगी थी किन्तु विचारो का झझा कही और चल रहा था। अपने तीन-चार वर्ष के विवाहित जीवन मे उन्होने सुरजीत के नेत्रो मे इस प्रकार के आसू कभी नही देखे थे। आज की उसकी बातो ने उन्हे झकझोर दिया था।

उस दिन के बाद से महेन्द्रसिंह के व्यवहार मे एक विचित्र-सा परिवर्तन दिखाई देने लगा। उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि अब वे अपने छोटे-मोटे व्यक्तिगत कार्य स्वय करेंगे और जितना हो सकेगा घर के काम मे सुरजीत का

हाथ वटाएगे। सुवह उठते ही उन्होने स्वय घडे मे एक गिलास पानी लेकर पिया। स्नान करने गए तो वही से अपना वनियान और कच्छा धोते लाए। कॉलेज जाने के पहले जूतो पर उन्होने स्वय ही पालिश कर ली। सुरजीत उनके इस व्यवहार पर चकित अवश्य हुई किन्तु वोली कुछ नही।

दो-चार दिन ऐसे ही वीत गए। अव महेन्द्रसिंह कालिज मे आकर अपने कपडे पलग पर फेंकते नही वल्कि व्यवस्थित रूप मे हैंगर पर टाग देते थे। शाम को सुरजीत जव खाना वनाने लगती तव वह पप्पी को लेकर छज्जे पर निकल जाते। एक दिन जव सुरजीत ने पूछा तव उन्होंने कहा, "मैंने सोच लिया है कि अब मैं अपने छोटे-मोटे काम स्वय करूगा और घर के काम मे भी तुम्हारी मदद करूगा।"

सुरजीत ने हसते हुए कहा, "हो चुका आपसे।"

"देख लेना।"

"तव तो वडी अच्छी वात है।"

उस दिन इतवार था, छुट्टी का दिन। इतवार को केश धोना महेन्द्रसिंह का नियम था। साधारणत: सुरजीत प्रातः उठते ही उनसे केश धोने के लिए कहना शुरू कर देती थी पर वे छुट्टी के मूड मे अपने सभी काम खूब वेफिक्री के साथ करते रहते थे। शौचादि से निवृत्त होकर वह चाय पी लेते, अखवार पढते रहते और पडोसियो से गप्पें लगाया करते। जव सुरजीत कहते-कहते परेशान हो जाती और विगडने लगती तव वह तौलिया, सावुन और दही आदि लेकर गुसलखाने मे जाते। आज भी उस क्रम मे कुछ विशेष अन्तर नही पडा किन्तु जव वह केश धोकर वाहर आए और उन्हे सुखा चुके तव स्वय ही तेल लगाने लगे। सुरजीत पप्पी को गुसलखाने मे नहला रही थी। लौटकर आई तो उसने देखा कि वह केशो मे तेल लगा, कघा कर जूडा वाध रहे थे।

सुरजीत के हृदय को गहरी चोट लगी। जब से महेन्द्रसिंह से विवाह हुआ था और जव भी वह उनके निकट रही थी रविवार को केश धोने के वाद उनपर तेल लगाने का काम स्वय ही करती थी। महेन्द्रसिंह के अन्य व्यक्तिगत कार्यों की अपेक्षा इस कार्य मे शायद वह अधिक सजग रहती थी। आज उन्होंने स्वय तेल लगा लिया है, यह देखकर उसे वडी ठेस लगी। किन्तु वह वोली कुछ नही।

दूसरे दिन महेन्द्रसिंह स्नान करने जाने लगे तव वह वोली, "कच्छा-वनियान धोने की जरूरत नही है, वही छोड दीजिएगा मैं वाद मे धो दूगी।"

अगले एतवार को महेन्द्रसिह केश धोकर छज्जे पर सुखाने लगे । थोडी देर मे उन्हे पप्पी के रोने का स्वर सुनाई दिया और वह उसे पुचकारने के लिए अन्दर आए ।

"रहने दीजिए, अभी इसे दूध पिलाना है ।" सुरजीत ने कहा और महेन्द्रसिह चुपचाप बाहर आकर फिर बाल सुखाने लगे । थोडी देर मे उन्होने हाथ लगाकर देखा, केश सूख गए थे । वह कमरे मे आए और अलमारी म से तेल की बोतल निकालकर कुर्सी पर बैठकर उसका ढक्कन खोलने लगे ।

सुरजीत बैठी यह सब देख रही थी । वह धीरे से उठी और पास आकर तेल की शीशी पकडते हुए बोली, "लाइए मैं लगा दू ।"

"मैं लगा लूगा ।"

"लाइए न लगा दू ।" सुरजीत ने जरा आग्रह से कहा ।

"नही, मैं स्वय लगाऊगा ।"

कहकर महेन्द्रसिह उसके हाथ से तेल की शीशी खीचने लगे । किन्तु उन्होने अनुभव किया कि सुरजीत की पकड कुछ कडी हो गई है । उन्होने उसकी ओर

देखा। सुरजीत की स्थिर दृष्टि उनपर गडी हुई थी। उनकी भी दृष्टि स्थिर हो गई। देखते ही देखते सुरजीत के नेत्र डबडबा आए।

"अरे, क्या हुआ ?" महेन्द्रसिह ने अचम्भे से पूछा।

"कुछ नही," सुरजीत ने आखे पोछते हुए कहा, "तेल मैं लगाऊगी।"

महेन्द्रसिह हस पडे और बोले, "तुम स्त्रियो को समझना तो शायद भगवान के भी वस मे नही।"

और यह कहते हुए उन्होने तेल की शीशी सुरजीत के हाथ मे देकर सिर आगे बढा दिया।

पानी और पुल

गाडी ने लाहौर का स्टेशन छोडा तो एकबारगी मेरा मन काप उठा। अब हम लोग उस ओर जा रहे थे जहा चौदह साल पहले ऐसी आग लगी थी जिसमे लाखो जल गए थे और लाखो पर जलने के निशान आज तक बने हुए थे। मुझे लगा हमारी गाडी किसी गहरी, लम्बी, अधकारमय गुफा मे घुस रही है और हम अपना सब कुछ इस अधकार को सौपे दे रहे है।

हम सब लगभग तीन सौ यात्री थे। स्त्रियो और बच्चो की भी सख्या हममे काफी थी। लाहौर मे हमने सभी गुरुद्वारो के दर्शन किए। वहा हमे जैसा स्वागत मिला उससे आगे अब पजेसाहब की यात्रा मे किसी प्रकार का अनिष्ट घट सकता है ऐसी सभावना तो नही थी, परन्तु मनुष्य के अन्दर का पशु कब जागकर सभी सभावनाओ को डकार जाएगा, यह कौन जानता है?

यही सब सोचते-सोचते मैंने मा की ओर देखा। देखा, हथेली पर मुह टिकाए, कोहनी को खिडकी का सहारा दिए वे निरतर बाहर की ओर देख रही थी। खेत कट चुके थे। दूर-दूर तक सपाट धरती दिखाई दे रही थी। मुझे लगा, मा की आखो मे से उतरकर यह सपाटता मन मे पूरी तरह छा गई है। फिर मैंने अपने डिब्बे के दूसरे यात्रियो की तरफ देखा। उनपर भी गहरी उदासी छायी हुई थी। समझ मे नही आ रहा था कि एकाएक उदासी सबपर क्यो छा गई है?

"तुम्हे तो यह रास्ता अच्छी तरह याद होगा?" मैंने मा का ध्यान तोडते हुए पूछा, "सैकडो बार आना-जाना हुआ होगा तुम्हारा?"

मा मेरी ओर देखकर मुस्कराई। वह मुस्कराहट सब कुछ खोकर पाई हुई मुस्कराहट थी। बोली, "मुझे तो इस रास्ते का एक-एक स्टेशन तक याद है। पर आज यह इलाका कितना बेगाना-बेगाना-सा लग रहा है। आज चौदह साल बाद इधर से जा रही हू। पहले भी ऐसे ही जाती थी। लाहौर पार करते ही अजीब-सी उमग नस-नस मे दौड जाती थी। सराई (हमारा गाव) जैसे-जैसे निकट आता

जाता, वहा की एक-एक शक्ल मेरे सामने दौड जाती, स्टेशन पर कितने लोग आए होते· ·।"

मा की आखो मे चौदह साल पहले की याद तरल हो आई थी। पिताजी ने अपना रोज़गार उत्तर प्रदेश मे ही जमा लिया था। हम सब भाई-बहनों का जन्म पजाब के बाहर ही हुआ था। मुझे याद है, पिताजी तो शायद साल मे एकाध बार ही पजाब जाते हो, पर मा के दो-तीन चक्कर जरूर लग जाते थे। हममे जो छोटा होता, वह मा के साथ जाता और जबसे मुझे याद है, मेरी छोटी बहन ही उनके साथ जाया करती थी।

उन दिनो, जब पजाब का विभाजन घोषित हो चुका था, पजाब की पाचो नदियों का जल उन्माद की तीखी शराब बन चुका था, मा ने फिर पजाब जाने का फैसला किया था। सभी ने ऐसे विरोध किया जैसे वे जलती आग मे कूदने जा रही हो। परन्तु पिताजी सहित हम सब जानते थे कि मा को अपने निश्चय से डिगाना कोई आसान काम नही। उन्होने सबकी बातो को हसकर टाल दिया। बीस-बाईस दिनो मे वे वापस आ गईं। गाव के घर का बहुत-सा सामान वे 'बुक' करा आई थी। अपने साथ वे अपना पुराना चरखा और दही मथने की बडी मथानी ले आई थी।

फिर सारे पजाब मे आग लग गई। घर के घर, गाव के गाव और शहर के शहर उस आग मे जलने लगे। आग रुकी तो लगा पेशावर तक सपाट फैली हुई जमीन अमृतसर और लाहौर के बीच से फट गई है और उस पार का फटा हुआ हिस्सा बीच मे गहरी खाई छोडकर न जाने कितना उधर खिसक गया है। हम सब भूल-से गए कि उस गहरी खाई के उस पार हमारा अपना गाव था। पक्की सडक के किनारे, पीछे की ओर एक नहर थी और पास ही जेहलम नदी अल्हड लडकी तरह उछलती-कूदती बहती थी।

मैं आज मा के साथ उस खाई पर राजकीय नियम के बाधे हुए पुल से गुज़रकर उसी ओर जा रहा था जो कल कितना अपना था, आज कितना पराया है।

मैं एक पुस्तक के पन्ने उलट रहा था। मा ने पूछा, "यह गाडी सराई स्टेशन पर रुकेगी ?"

मैंने कुछ सोचा, फिर कहा, "हा, शायद रुके। पर पहुचेगी रात के एक-दो बजे। हम लोग गहरी नींद मे सो रहे होगे। स्टेशन कब निकल जाएगा। पता भी नही लगेगा। और अब अपना रखा ही क्या है वहा ?"

मा के चेहरे पर खिसियाहट-सी दौड गई। बोली, "तुम्हारे लिए पहले भी वहा क्या रखा था ?"

मेरी बात से मा को चोट पहुची थी। बिना और कुछ कहे मैं सिर झुकाकर अपनी पुस्तक के पन्नो मे उलझ गया।

धीरे-धीरे अधेरा छाने लगा। मा ने पोटली खोलकर खाने के लिए कुछ निकाला। मेरे एक दूर के मामाजी साथ थे। तीनो ने मिलकर कुछ खाया और सोने की तैयारी करने लगे। मामाजी तो दस मिनट मे ही खुर्राटे भरने लगे। मैं भी एक ओर लुढक गया। मा वैसी ही बैठी रही।

कुछ देर बाद एकाएक मेरी आख खुली। देखा, मा बाहर फैले हुए अधेरे की ओर निप्पलक देखती हुई बैठी है। घडी देखी, साढे दस बज गए थे। मैंने कहा, "मा, तुम भी लेट जाओ न।"

"अच्छा।" उनके मुह से निकला और वे अधलेटी-सी हो गई।

उस अधनीदी अवस्था मे मैंने कोई स्वप्न देखा, यह तो मुझे याद नही आता, पर उस नीद मे भी कुछ घबराहट अवश्य होती रही थी। शायद किसी अस्पष्ट स्वप्न की ही घबराहट हो ? कोई लाल-सी तरल चीज़ मुझे अपने चारो ओर फिरती अनुभव होती थी और मुझे लग रहा था कि उस लाल-लाल गाढी-सी चीज़ पर मेरे पैर फच-फच पड रहे है। फिर एकाएक मैं हडबडाकर उठा। मा मुझे झक-झोर रही थी। अजीब-सी घबराहट और उत्तेजना से उनके हाथ काप रहे थे।

"क्या है ?"

मैंने झाककर देखा। हमारी गाडी छोटे-से स्टेशन पर खडी थी। प्लेटफार्म पर लैंप-पोस्टो की हल्की-हल्की रोशनी थी और अजीब-सा कोलाहल वहा छाया हुआ था। एकबारगी मेरा रोम-रोम काप उठा। देश-विभाजन के समय की अनेक सुनी-सुनाई घटनाए बिजली बनकर कौंध गई, जब दगाइयो ने कितनी गाडियो को जहा-तहा रोककर लोगो को गाजर-मूली की तरह काट डाला। मामाजी जागकर मेरा कधा हिला रहे थे।

"अरे क्या बात है ?"

तभी मेरे कानो मे आवाज पडी। उस भीड मे से कोई चिल्ला रहा था। "अरे इस गाडी मे कोई सराई का है ?"

"यह कौन-सा स्टेशन है ?" मैंने मा से पूछा।

मा ने कहा, "सराई ··अपने गाव का स्टेशन।"

बाहर से फिर आवाज आई, "अरे इस गाडी मे कोई सराई का है ?"

मैंने मा की ओर देखा। उनके चेहरे पर पूर्ण आश्वस्तता थी।

"पूछो इनसे, क्या बात है ?"

मैंने खिडकी से गरदन निकाली। बहुत-से लोग घूमते हुए पुकार रहे थे, "अरे कोई सराई का है ?"

पास से जाते हुए एक आदमी को बुलाकर मैंने पूछा, "क्या बात है जी ?"

"आपमे कोई इस गाव का है ?"

"हा, हम है इस गाव के ··" मा आगे आकर बोली।

"तुम सराई की हो ?" उस आदमी ने जोर देकर पूछा।

"हा, जी।"

मा के इतना कहते ही स्टेशन पर चारो ओर शोर मच गया। इधर-उधर घूमते हुए बहुत-से आदमी हमारे डिब्बे के सामने जमा हो गए। फिर कई आवाजे एक साथ आई।

"तुम सराई की हो ?"

"हा जी, हम सराई के ही हैं ·" मा ने जोर देकर कहा, "इसी गाव के ?"

उपस्थित जन-समुदाय मे कोलाहल-सा हुआ। किसीकी आवाज आई, किस घर से हो ?"

मा ने मेरी ओर देखा। मैंने कहा, "मेरे पिताजी का नाम सरदार मूलासिह। ये मेरी मा हैं।"

"तुम मूलासिंह के बेटे हो ?" कई लोग एक साथ चिल्लाए, "तुम मूलासिह की बीवी हो, खेलसिह की मामी ? कैसे है सब लोग ?" कहते-कहते कितने ही हाथ हमारी ओर बढने लगे। लोग हमारे सबधियो मे सबकी कुशल-क्षेम पूछते हुए अपने हाथ की पोटलिया मुझे और मा को थमाते जा रहे थे। उनमे बादाम, अखरोट, किशमिश आदि सूखे मेवे बधे हुए लग रहे थे। मैं और मा गुम-सुम-से

उन्हे ले-लेकर अपनी सीट पर रखते जा रहे थे। देखते ही देखते हमारी बर्थ छोटी-छोटी कपडो की पोटलियो से भर गई।

मैं हक्का-बक्का-सा यह सब देख रहा था। मा अपने सिर का कपडा बार-बार सभालती हुई हाथ जोड रही थीं। खुशी से उनके होंठ फडफडा रहे थे। मुह से निकल कुछ भी न रहा था पर लगता था आखे अभी चू पडेंगी।

वही खडे गार्ड ने हरी लालटेन ऊपर उठाई और कोट की जेब से सीटी निकाली। मैंने देखा, तीन-चार आदमियो ने उसे पकड-सा लिया।

"ओये बाबू, दो-चार 'मिट' और खडी रहने दे न गाडी को। देखता नही, ये बीबी इसी गाव की है ।" और एक ने उसका लालटेन वाला हाथ पकडकर नीचे कर दिया।

"भरजाई, सरदार जी कैसे है? उन्हे क्यो नही लाई पजेसाहब का दर्शन कराने?" एक बूढा-सा मुसलमान पूछ रहा था।

मा ने दोनो हाथो से सिर का कपडा और आगे कर लिया, उनके मुह से धीमे से निकला, "सरदार जी नही रहे ।"

"क्या ? मूलासिह गुजर गए, क्या हुआ था उन्हे?" मा चुप रही। मैंने जवाब दिया, "उनके पेट मे रसौली हो गई थी। एक दिन अचानक फूट गई और दूसरे दिन पूरे हो गए।"

"ओह, बडे ही नेक बदे थे। खुदा उन्हे दरगाह मे जगह दे।" उनमे से एक ने अफसोस प्रकट करते हुए कहा। कुछ क्षण के लिए सबमे खामोशी छा गई।

"भरजाई, तेरे बच्चे कैसे है?"

"वाहेगुरु की किरपा है, सब अच्छे है।" मा ने धीरे से कहा।

"अल्लाह उनकी उमर दराज करे।" कई आवाजे एक साथ आई।

"भरजाई, तुम अपने बच्चो को लेकर यहा आ जाओ," किसी एक ने कहा और कितनो ने दोहराया, "भरजाई, तुम लोग वापस आ जाओ, वापस आ जाओ।" प्लेटफार्म पर खडी कितनी आवाजें कह रही थी।

"वापस आ जाओ!"

"वापस आ जाओ!"

मैंने सुना, मेरे पीछे खडे मामाजी कुढते हुए कह रहे थे, "हुह 'बदमाश कही के। पहले तो मार-मारकर यहा से निकाल दिया, अब कहते है वापस

आ जाओ…।"

पर प्लेटफार्म पर खडे लोगों ने उनकी वात नही सुनी थी। वे कहे जा रहे थे :

"भरजाई, तुम अपने वच्चो को लेकर वापस आ जाओ! वोलो भरजाई, कव आओगी? अपना गाव तो तुम्हे याद आता हे न? भरजाई, वापस आ जाओ· ।"

मा के मुह से कुछ नही निकल रहा था। वे सिर का कपडा समालते हुए हाथ जोडे जा रही थी।

दूर खडा गार्ड हरी लालटेन दिखाता हुआ सीटी वजा रहा था।

इजन ने सीटी दी। गाडी 'फक-फक' करती हुई चल दी। भीड की भीड हमारे डिव्वे के साथ चल दी।

"अच्छा भरजाई, सलाम ··अच्छा वेटे, सलाम· ·खेलसिह को हमारा सलाम देना· ·सवको हमारा सलाम देना!"

मा के हाथ जुडे हुए थे और मुह से गद्‌गद स्वर मे धीरे-धीरे कुछ निकल रहा था। गाडी कुछ तेज़ हो गई। हम दोनो खिडकी से सिर निकाले हाथ जोडे रहे। भोड के लोग वही खडे हाथ ऊपर उठाए चिल्लाते रहे।

गाडी स्टेशन के वाहर निकल आई तो मैंने वर्थ से पोटलिया हटाकर एक ओर की और मा से कुछ कहने के लिए उनकी ओर देखा।

मा की आखो से आसुओ की अविरल धार वह रही थी, वहे जा रही थी। वे वार-वार दुपट्टे से आखें पोछ रही थी, पर टूटे हुए वाव की तरह पानी वहता ही जा रहा था।'

हमारी गाडी जेहलम के पुल पर आ गई थी। रात्रि की उस नीरवता मे ङर ·खडर खडर की तेज आवाज़ आ रही थी। मैं खिडकी से झाककर ॰ न का पुल देखने लगा। मैंने सुना था कि जेहलम का पुल वहुत मजवूत है। ॰र और लोहे के वने उस मजवूत पुल को अधेरे मे मैं देख रहा था। मेरी दृष्टि ॰र नीचे जा रही थी, जहा अधेरा घुप था। पर मैं जानता था, वहा पानी है। जेहलम नदी का 'कल-कल' करता हुआ स्वच्छ और निर्मल पानी जो उस पत्थर और लोहे के वने हुए पुल के नीचे से वह रहा था।

काला बाप गोरा बाप

जमीला ने खत की चार पक्तिया पढी और उसके मुह से अनायास निकल पडा, "ताज्जुब है" फिर एक उपेक्षा और वेपरवाही-भरी मुस्कराहट उसके चेहरे पर बिखर गई। वह पत्र पढती गई। पढ चुकने के वाद कुछ देर बैठी वह कुछ सोचती रही। फिर कलम-दवात उठाकर उसका उत्तर लिखने बैठ गई। उसने लिखा

" समझ मे नही आता तुम्हे क्या कहकर पत्र लिखू। तुमने 'मेरी जमीला' लिखा है। एक जमाना था जब तुम 'मेरी जमीला' लिखते थे और मैं जवाब मे 'मेरे सिरताज' लिखा करती थी। पर आज 'मेरी जमीला' लिखने का हक न तुम्हारे पास है, न 'मेरे सिरताज' लिखने का हक मेरे पास। खैर, मैं बिना किसी लकब के यह खत तुम्हे लिख रही हू।

" सचमुच तुम्हारा खत पाकर मैं हैरान रह गई। दस साल के वाद तुम्हे मेरी और अपने बच्चो की याद कैसे आ गई। लगता है सकीना बीवी से भी तुम्हारा दिल भर गया है। पर तुम्हे काहे की फिकर है। अब तीसरी बीवी ले आओ। आखिर मर्द हो न, बिना तीन-चार बीविया रखे तुम्हारी मर्दानगी का सबूत कैसे मिलेगा।

" तुमने लिखा है, तुम एक बार मुझसे मिलना चाहते हो। अपनी लडकियो को देखना चाहते हो। वैसे मुझे इसमे कोई एतराज़ नही। पर मैं समझती हू, हमसे मिलकर तुम्हे खुशी नही होगी। जिस हालत मे तुम दस साल पहले हमे दिल्ली मे बेसहारा छोडकर सकीना से साथ ऐश की ज़िन्दगी गुज़ारने ग्वालियर चले गए थे, हमारी हालत आज उससे बहुत अच्छी है। तुम्हारी शीरी अब सोलह साल की एक खूबसूरत लडकी है। वह फिल्मो मे काम करती है, नाचती है, गाती है और परदा नाम को भी नही करती। मुझे यकीन है, तुम उसका यह रूप देखकर घबरा जाओगे। उससे मिलने के लिए घर पर न जाने कितने मर्द रोज़ आते हैं। अपनी

फिल्म मे उसे लेने के पहले तरह-तरह के प्रोड्यूसर तरह-तरह से उसके शरीर की गोलाइया नापते है। अखबारनवीस हर ढग की उसकी फोटुए उतारते है, क्योकि एक फिल्म-स्टार की पब्लिसिटी के लिए यह सब बहुत जरूरी है। क्या तुम यह सब बर्दाश्त कर पाओगे ?

"और हा, शीरी का फिल्मी नाम है कामिनी बोस। यह तो तुम जानते ही होगे कि यहा फिल्मो मे हिन्दू नाम रखने का रिवाज है। और अब तो नाम के साथ-साथ हिन्दू जाति भी लगाई जाती है।

"और शहनाज, जिसे तुम दुधमुही छोड गए थे, अब ग्यारह साल की हो गई है। स्कूल मे पढती भी है और सरयू महाराज से डास सीखती है। बात करने मे बडो-बडो के कान काटती है। दो-चार पिक्चरो मे छोटे-मोटे रोल भी कर चुकी है। लोग कहते है, वह बहुत चमकता हुआ सितारा बनेगी।

"और रही मेरी बात। मुझे देखकर तो तुम पहचान भी नही पाओगे। तुम्हारी वह जमीला—जो पराये मर्द की छाया भी नही देखती थी, बुर्के के बगैर घर से बाहर पाव भी नही रखती थी, और उसके मुह मे जुबान है, यह तो तुम भी नही जानते थे—आज ऐसा बनाव-सिगार करती है कि उसकी ढलती हुई उमर भी धोखा खा जाती है। वह शीरी के साथ स्टूडियो जाती है। परदा उसके लिए गुजरे जमाने की बात बन चुकी है। तुम शायद जानते नही, फिल्म लाइन मे बडे-बडे घाघ है। पर तुम्हारी बेजुबान जमीला अब बडे-बडे घाघ प्रोड्यूसरो के भी कान काट लेती है।

"और आखिर मे तुम्हे अनवर की भी बात बताती हू। मासूम जमीला को जब तुम दुनिया की ठोकरे खाने के लिए छोड गए, तब यही अनवर उसका सहारा बना। वह एक गोरा खूबसूरत नौजवान था, पर जिन्दगी से नाउम्मीद। कई साल से वह बम्बई की फिल्म लाइन मे अपनी किस्मत आजमा रहा था। लेकिन कामयाबी उससे कोसो दूर रही। उन दिनो वह किसी काम से दिल्ली आया था। मेरी उससे मुलाकात हो गई। मेरे हाल जानकर उसने मुझसे शादी की पेशकश की। उस वक्त मुझे ताज्जुब हुआ था कि ऐसा खूबसूरत नौजवान भला मुझ जैसी बेसहारा, दो बेटियो वाली औरत से निकाह करने को क्यो तैयार है। मगर आहिस्ता-आहिस्ता मैं सब समझ गई। हिन्दुस्तान मे लोग लडकियो को मुसीबत समझते है। खास तौर से बेबाप की लडकिया तो फूटी आखो नही सुहाती।

लेकिन अनवर की तजुर्बेकार निगाहे जानती थी कि फिल्म लाइन मे यही बदनसीब लडकिया सोने के अडे देनेवाली मुर्गियो मे बदली जा सकती है। मुझसे शादी करने की शायद उसकी यही वजह हो। और वह अपने मकसद मे कामयाब भी हुआ है। आज वह उन शीरी और शहनाज जैसी लडकियो का बाप है, जो सैकडो कमाती है। कल हजारो-हजारो कमाएगी और खुदा ने चाहा तो उनका पाव लाखो मे भी पडेगा।

"लेकिन इतना मैं जरूर कहूगी कि अनवर ने चाहे जिस खुदगरजी की वजह से मुझसे शादी की हो वह कभी निरा खुदगरज नही रहा। शीरी और शहनाज को वह अपनी बेटियो की तरह ही प्यार करता है। दोनो लडकिया उसे ही अपना बाप समझती है। और मैं तो उसके एक बेटे की मा भी हू। अनीस पाच साल का होने को आया है।

"इतनी सब बाते जानकर भी क्या तुम यहा आना चाहोगे? अगर आना चाहो तो मुझे कोई एतराज नही है। हा, एक बात तुम्हे जरूर बता दू। तुम्हारी लडकियो पर मैं यह नही ज़ाहिर होने दूगी कि तुम उनके बाप हो।

"और क्या लिखू?

किसी जमाने की तुम्हारी
जमीला"

खत लिखकर जमीला बेफिक्र हो गई। ऐसा खत पाकर भी यूनुस उससे या उसकी लडकियो से मिलने आ सकता है, इसकी उसे जरा भी उम्मीद नही थी। परन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने एक हफ्ते बाद देखा—दस साल पहले के यूनुस की हल्की-हल्की पहचान बतानेवाला एक काला, बीमार और बूढा-सा आदमी उसके दरवाज़े पर खडा है। उस समय जमीला घर मे अकेली ही थी। अनवर शीरी को लेकर शूटिंग पर गया था। शहनाज और अनीस स्कूल गए थे।

नहा-धोकर यूनुस बैठक मे आ बैठा। उसकी निगाह ने एक-एक कर कमरे की हर चीज को नापा—सोफासेट, रेशमी परदे, रेडियो, फूलदान और तरह-तरह की चीज़े, जिन्हे उसने बडे लोगो की दुनिया का अग मानकर कभी अपनी कल्पना मे भी प्रविष्ट नही होने दिया था। फिर उठकर वह दीवारो पर लगे चित्रो को देखने

लगा। एक बडी खूबसूरत-सी लगने वाली लडकी की कई तस्वीरें वहा लगी हुई थी। एक तस्वीर मे उसके बाल काली घटा के रूप मे बिखरे थे। उस लडकी का चेहरा सचमुच चाद-सा दिखाई दे रहा था। दूसरी तस्वीर मे वह एक कसी हुई पैंट और आधी आस्तीन की कमीज पहने, हसती हुई कोई अग्रेजी डाम कर रही थी। तस्वीर मे उसका अग-अग उभरा हुआ नजर आ रहा था। तीसरी तस्वीर मे वह जमीन पर कुहनिया टिकाकर बैठी थी। बाल छितरे हुए थे और भीगी हुई आखो से आसू ढुलककर गाल पर आ टिके थे।

"पहचानते हो, ये किसकी तस्वीरे है?" जमीला ने पीछे से मेज पर चाय रखते हुए पूछा। यूनुस ने उसकी ओर देखा और चुप रहा। शायद उसने अपनी चुप्पी से यह जताया कि ये तस्वीरे किसकी है, यह जानकर उसे अधिक आश्चर्य नही होगा।

"पहचान सकते हो अपनी शीरी को?" जमीला ने फिर पूछा और यूनुस फिर चुप रहा। जैसे उसने कहा, यह उसकी कल्पना के परे की चीज नही है। उसने एक निगाह से सभी तस्वीरो को फिर देखा और बैठकर चाय पीने लगा।

शाम को शहनाज स्कूल से आई तो यूनुस सोफे पर टागे फैलाए बीडी पी रहा था। वह उसे घूरती हुई मा के कमरे मे चली गई और बोली, "अम्मी, कौन है यह बूढा? बीडी की राख से सारा फर्श खराब कर रहा है।"

जमीला ने शहनाज को एक नजर देखा। फिर बोली, "अपने मेहमान है, बेटा। हां, देख ऐश ट्रे कही इधर-उधर रखी होगी। उठाकर उनके पास रख आओ।"

शहनाज ने ट्रे यूनुस के सामने रख दी और बिना कुछ बोले घूरती हुई वापस लौ आई। यूनूस ललचाई आखो से उसे देखता रहा। फिर शीरी आई और अन- भी। यूनुस ने देखा यह वही लडकी है, जिसकी इतनी सारी तस्वीरे कमरे मे ी हुई हैं। उसकी आखो मे पाच-छ साल की वह शीरी दौडने लगी, जो गदी- फ्राक पहने 'अब्बा' कहकर उसके पैरो से लिपट जाया करती थी। क्या यह ही शीरी है? उसकी बेटी शीरी। वह उससे कुछ गज के फासले पर थी, परन्तु यूनुस को लग रहा था, जैसे यह फासला कुछ गजो का नहीं है। यह तो केवल फासला है। ऐसा फासला जिसे नापने के लिए गज-मील कुछ बने ही नहीं है। जमीला ने सबसे कह दिया, उसके दूर का रिश्तेदार है और ग्वालियर से आया है।

रात को खाना खाते समय खूब हसी-ठट्ठा हुआ। स्टूडियो की बातें, शूटिंग

की बातें, प्रोड्यूसर की बातें, इतनी बातें कि सारा वातावरण बातों के नद में डूब गया। उसमें जैसे अनवर और जमीला, शीरी और शहनाज, छोटी-छोटी डोंगियों की तरह उतराने लगे, हिलोरें लेने लगे। और यूनुस जल में एक भारी पत्थर की तरह डूब गया। किसीको पता भी नहीं लगा कि इन थिरकती हुई डोंगियों के नीचे कोई पत्थर भी है।

रात को जमीला ने उसके सोने का प्रबन्ध बैठक में कर दिया। शीरी और शहनाज अपने कमरे में चली गई। अनवर, जमीला और अमीर अपने कमरे में सो गए। यूनुस बैठक में पड़ी चारपाई पर लेटा शीरी की तस्वीर देखता रहा। वह सोचता रहा, कितनी खूबसूरत है शीरी। कितनी प्यारी लगती है शहनाज। लेकिन ये तो उसकी बेटियां नहीं हैं। उसकी एक बेटी थी, गंदे फ्राक वाली सांवली सी, जिसके बाल हमेशा मिट्टी से भरे रहते थे और जो उसे देखते ही 'अब्बा' कहकर लिपट जाती थी। उसकी शहनाज एक टूटे-से पालने में पड़ी रहती थी। फूलों की तरह खिली हुई इन लड़कियों का बाप वह नहीं हो सकता। उनका बाप तो अनवर ही है—गोरा, तन्दुरुस्त और रईस मालूम होने वाला अनवर।

शीरी और शहनाज ने उससे एक बात भी नहीं की। यूनुस ने कई बार उनसे बोलना चाहा, कुछ बात करनी चाही। पर वे चिकनी मछलियों की तरह हाथ से फिसलती रहीं। और यूनुस उन्हें हाथ से छूटे हुए गैस के गुब्बारे की तरह देखता रहा।

दस साल पहले उसके छोटे-से घर में भी यही जमीला, यही शीरी और यही शहनाज़ थी। तब घर की एक-एक चीज, एक-एक बात, एक-एक सांस उसके साथ बंधी हुई थी। पर आज इस घर में वह, जमीला, शीरी और शहनाज तो हैं, किन्तु बंधनों का एक धागा भी उसके चारों ओर नहीं है।

"अम्मी, वह बूढ़ा फिर फर्श खराब कर रहा है।" शहनाज जमीला से बोली, "ऐश ट्रे पास रखी है, फिर भी उसकी बीड़ी की राख फर्श पर गिर रही है।"

जमीला को शहनाज़ की बात चुभी। बोली, "बेटी, किसी मेहमान के लिए ऐसा नहीं कहते। कोई बात नहीं, फर्श साफ हो जाएगा।"

"शीरी स्टूडियो जाने के लिए तैयार हो चुकी थी। बैठक में आकर आलमारी से उसने चूड़ियों का एक डिब्बा निकाला और अपनी साड़ी को मैच करने वाली चूड़ियां छांटने लगी। यूनुस बैठा उसे एकटक देखता रहा। उसकी इच्छा हुई, वह

शीरी को बेटी कहकर बुलाए। उसको अपने पास बैठा ले। उससे कुछ बातचीत करे। लेकिन उसे लगा, यह काम बहुत मुश्किल है। उतना ही मुश्किल, जितना किसी अदना सिपाही का किसी शहज़ादी को बुलाना। वह बैठा साहस बटोरता रहा। इतने मे शीरी चूडिया पहनकर मुडी। यूनुस उसे एकटक देख रहा था। शीरी की नजर उसकी नजर से मिली। यूनुस की आखो मे वात्सल्य की तरलता उमड आई। तरलता का कुछ आभास शीरी को भी हुआ। वह मुस्करा दी। शीरी की मुस्कराहट यूनुस की नस-नस मे बिजली बनकर दौड गई। यह अप्रत्याशित सौगात पाकर उसका हृदय तेज़ी से धडकने लगा। उसके झुर्रियो-भरे चेहरे पर आनन्द की रेखा बिखर गई। उसके मुह से निकल पडा, "सुबह-सुबह कहा जाने को तैयार हो गई बेटी।" और फिर उसके चेहरे पर एक घबराहट फैल गई। उसे लगा उसने बहुत बडी बात कह दी है।

शीरी उसी तरह मुस्कराती हुई बोली "शूटिंग पर जा रही हू।' और वह कमरे के बाहर निकल गई। यूनुस को लगा, गहरी प्यास मे ठडे पानी की कुछ बूदे उसके मुह मे गिर गई है। वह उठा और कमरे मे इधर-उधर टहलने लगा। फिर शीरी की एक तस्वीर के सामने वह रुक गया और उसे देखने लगा। वहा से हटकर वह दूसरी तस्वीर के सामने जा खडा हुआ। बहुत देर वह तीसरी को देखता रहा। तीसरी तस्वीर देख चुका तो फिर पहली के सामने आ खडा हुआ, फिर दूसरी, फिर तीसरी। उसने तस्वीरो के कितने ही चक्कर लगा डाले। उसे लगा ठडे पानी की बूदो से उसका गला तर हो गया है।

वह आलमारी के पास जा खडा हुआ। आलमारी के ऊपर कुछ किताबे रखी। वह उन्हे उठाकर देखने लगा। किताबो पर शहनाज का नाम लिखा हुआ। वह सोफे पर बैठकर उनके पृष्ठ उलटने लगा।

"ऐ बुड्ढे, मेरी किताबें क्यो उठाई ?"

यूनुस ने चौककर देखा। सामने गुस्से से लाल-पीली शहनाज खडी थी।

"अम्मी, देखो न, यह बुड्ढा मेरी किताबे खराब कर रहा है," शहनाज ी होकर मा के कमरे की ओर देखती हुई बोली।

"अरी क्या है ?" कहती हुई जमीला उस कमरे मे आ गई। यूनुस हक्का-बक्का-सा देख रहा था। शहनाज रोनी आवाज मे बोल पडी, "देखो न यह बुड्ढा ''।"

"चुप, वदतमीज," जमीला पट-सी पड़ी, "अपने बाप [illegible]
आती ?"

'वाप' शब्द जैसे सारे कमरे मे कजरनी हुई [illegible]
जमीला की जैसे सुध-बुध ही मारी गई। यह उसके मन [illegible]
को लगा, कही से उठता हुआ एक शब्द आया, [illegible]
अनिश्चय के सागर मे डुवोकर चला गया! और [illegible]
टुकुर देखती रही—कभी जमीला को, और कभी यूनुस [illegible]
भरकर यूनुस को फिर देखा और जमीला से वोली, "यह [illegible]

जमीला सयत हो चुकी थी। एक नमी-सी उसकी आखो [illegible]
वोली, "हा, वेटी, यह तेरे वाप है।"

शहनाज ने एक वार फिर यूनुस की ओर देखा और [illegible]
"नही, नही, मैं ऐसा वाप नही लूगी मैं नही लूगी [illegible]।"

जमीला ने डाटा, "पागल हुई है।"

शहनाज और मचली, "यह वाप नही लूगी [illegible]," [illegible]
देती हो अनीस को गोरा वाप देती हो, और मुझे काला वाप [illegible]
वाप नही लूगी नही लूगी।"

वह फफक-फफककर रोने लगी, जैसे भाई-वहन की तुलना मे उसे [illegible]
घटिया खिलौना दिया जा रहा है। उसके साथ वहुत वड़ा अन्याय किया जा रहा
है। उसने यूनुस के हाथो से अपनी कितावें छीन ली और रोती हुई कमरे से वाहर
निकल गई। कमरे की हवा का वोझ वढकर जमीला और यूनुस पर हावी हो
गया। वे सुन्न-से हो गए। जमीला चुपचाप एक कुर्सी पर वैठ गई। दोनो मे से कोई
कुछ नही वोला। काफी देर वे इसी तरह वैठे रहे। फिर यूनुस वोला, "ग्वालियर
जाने के लिए गाड़ी कितने वजे मिलती है ?"

"पजाव मेल तो करीव तीन वजे जाती है और पठानकोट एक्सप्रेस शायद
रात के दस वजे," जमीला ने छोटा-सा उत्तर दिया।

इसके साथ ही दोनो की नज़रे एक साथ कमरे मे लगी घडी की ओर उठ
गई। सवा दस वजे थे। फिर दोनो ने एक-दूसरे को देखा। यूनुस की नज़र ने
कहा—"मुझे पजाव मेल मिल सकती है ?"

जमीला की नज़र ने कहा, "हा, तुम्हे पजाव मेल मिल सकती है।"

उजाले के उल्लू

कुलदीप ने अपना लेटर बाक्स खोला तो दो-तीन पोस्टकार्डों के अलावा उसे वही लिफाफा दिखाई दिया—पोस्ट आफिस वाला बीस नये पैसे का चौकोर लिफाफा। बड़े-बड़े, टेढ़े-मेढ़े कैपिटल अक्षरो मे उसका नाम और पता सारे लिफाफे पर छितरा हुआ था। वह मुस्कराया। उसे मालूम था तोप का यह लिफाफा आज उसके लेटर बाक्स मे जरूर पडा होगा। पिछले पाच-छ दिन मे वह तोप से नही मिला था। दफ्तर मे उसके कितने टेलीफोन आ चुके थे पर वहा तो उसकी कम्पनी के एकाउटस का ऑडिट हो रहा था और वह ऑडीटरो के पास एक फाइल से दूसरी और एक लेजर से दूसरे लेजर की चेकिंग कराने मे बुरी तरह व्यस्त था।

"बाबू जी, तोप बीबी जी का फोन आया था। उन्होने कहा है, फोन जरूर करे।" यह उसे शायद सातवी बार चपरासी ने याद कराया था।

और वह फाइलो के लिए भागा चला जा रहा था। उसके मुह से निकला 'अच्छा' शब्द चपरासी से दूर, नीचे उतरने वाली सीढ़ियो मे कही गिरा पड़ा था।

जानता था तोप छटपटा रही होगी। उस छटपटाहट मे वह कितनी बार फोन करती है और जब वह शान्त नही होती तो उसे कागज पर उडेलकर, लपेटकर, और लिफाफे मे बन्द करके कुलदीप को भेज देती है।

एक लम्बे पत्र की उम्मीद मे कुलदीप ने लिफाफा खोला। पर आज शायद तोप की छटपटाहट अन्दर की बहुत गहराइयो मे उतर गई थी। लिफाफे मे एक छोटा-सा कागज था और उस कागज पर केवल एक शब्द लिखा था :

"दीप ?"

कुलदीप उस शब्द को कितनी देर देखता रहा।

दूसरे दिन कुलदीप सफाई दे रहा था, "मैं कम्पनी के आडिट मे बहुत बिजी था।"

आखो के सागर मे कितना-सा प्यार भरकर तोप कह रही थी, "सात दिन से

तुम्हारी कोई खबर नही मिली। मैने सोचा, कही तुम्हारी तबीयत ही न खराब हो गई हो।"

पाम व्यू होटल की चारदीवारी से लगे दोनो रेत पर बैठे हुए थे। दूर समुद्र की लहरो का घरघराता हुआ शोर सुनाई दे रहा था। वह चादनी रात नही थी। आकाश मे कुछ तारे इधर-उधर टिमटिमा रहे थे। सामने समुद्र पर घुप अधेरा उतरा हुआ था और तारो की हल्की-हल्की रोशनी मे दोनो खूब सटे हुए थे।

तोप बोली, "अच्छा बोलो, तुम्हे चादनी रात अच्छी लगती है या अधेरी ?"

कुलदीप उसकी गोद मे अधलेटा-सा हो गया। फिर अपनी बाहो को उसकी कमर के चारो ओर लपेटकर उसने उसके आचल मे मुह छिपा लिया, "चादनी रात। उस समय ऐसा लगता है जैसे चादनी सिमटकर मेरी बाहो मे आ गई है। तुम तरल होकर सारी चादनी मे बिखर जाती हो।"

"पर मुझे तो अधेरी रात अच्छी लगती है।" तोप उसके होठो पर अपनी उगलिया फिरा रही थी, "तारो से टिमटिमाती हुई अधेरी रात, जैसी आज है। समुद्र की लहरे दिख नही रही है पर उनका अहसास मुझे है। चादनी मे चीजे बहुत साफ नजर आती है। बहुत साफ नजर आनेवाली चीजे मुझे अच्छी नही लगती। चाहती हू दिखाई कम दे, पर पास होने का अहसास बहुत-सा हो।"

उस अधेरे मे वे इतने पास हो गए कि उनका पास होना सिर्फ अहसास की बात नही रह गई।

कई बार लगता है जैसे इसानी जिन्दगी मे कही अपरिचय, कोई दूरी, कोई दुराव है ही नही। कुलदीप और तोप कुल तीन महीने पहले रेसकोर्स मे पहली बार मिले थे। रेसकोर्स मे मिलना भी भला कोई मिलना है जहा दस-बीस घोडो के पीछे भाग-भागकर लोग खुद भी घोडे बन जाते है। पर शायद इसीलिए रेसकोर्स का मिलना ही असली मिलना हो, क्योकि वहा की भाग-दौड मे सुसस्कृत मनुष्य की सारी औपचारिकताए घोडो की टापो के नीचे रौदी जाती है और सब, सबसे उसी तरह मिलते हैं जैसे, शायद, सब घोडे सब घोडो से मिलते हो।

कुलदीप के साथ उस दिन भल्ला और रश्मि थे। रश्मि रेस की दीवानी थी और भल्ला रश्मि का। उन दोनो की दीवानगी मे उस दिन कुलदीप फस गया। उसकी 'गर्लफ्रेण्ड' उस दिन अचानक ही दिल्ली उड गई थी इसीलिए जब वह इतवार की

सुनहरी हवा मे कटी पतग की तरह मडरा रहा था, मल्ला ने कहा, "चल, आज तू हमारे कवाव मे हड्डी वन।"

रेसकोर्स के मैदान मे वह हजारो-हजार पागलो को देख रहा था जो घोडो की दौड के साथ अपनी उम्र और लिग के फर्क को ताक मे रखकर चीख रहे थे—

"वकअप' स्टार आफ इडिया आ आ आ वक अप। शव्वास ' गुलमोहर ' शव्वा आ आस।"

"अवे' अवे'' साले'''डेविड''' मगा ' मगा वास्सा को ?'''धात् तेरे की—ई ई ई'' "

एक वात उसने वहा वडे ध्यान से देखी। कुछ लोग 'टिप्स' दे रहे हैं और हजारो आखें 'टिप्स' की याचना करती हुई मारी-मारी फिर रही हैं। ऐसी पाच-सात जगहो को सूघकर वह भी लाल बुझक्कड वन गया। एक कागज उसने चौप-तिया मोडकर अपनी वाई हथेली मे दवा लिया।

दूसरे क्षण वह भी टिप्स दे रहा था।

पहला टिप उसने उस घोडे का दिया जिस घोडे की वुकिंग विण्डो के सामने की लाइन सवसे छोटी थी।

टिप लेने वालो मे तोष भी थी।

वह घोडा हार गया तो वह सनसनाती हुई उसके पास आई, "वाह साहव, खूव 'टिप' दिया आपने ! मैं तो पहले ही जानती थी, वह घोडा हारेगा। तभी तो उसके टिकट सवसे कम विक रहे थे।"

"देखिए, वह टिप एक वडे खास 'वुकी' की दी हुई थी।" वह वोला।

"आपने देखा नही, वह घोडा जीतने वाले घोडे से वस जरा-सा ही पीछे रह गया था। हिसाव-किताव मे थोडी-वहुत गलती तो हो ही जाती है।"

"खैर, अव कोई अच्छा-सा टिप दीजिए।"

कुलदीप ने कनखियो से वुकिंग विंडोज़ की ओर देखा और जिसके आगे सवसे लम्वी लाइन लगी थी उसका नाम वता दिया।

उसकी 'थैंक्यू' के वाद कुलदीप ने देखा, वह अपने पीछे खडे एक उजवक से आदमी को वाह से घसीटती हुई उस ओर वढ गई है और सिमटते-सिमटते वह आदमी अपनी हिप पाकिट से पर्स निकाल रहा है।

हालाकि उसका बताया हुआ वह घोडा भी हार गया था, और उसने उला-हना भी दिया था परन्तु जान पहचान के लिए सिर्फ घोडो की जरूरत थी, न कि घोडो की हार-जीत की।

उसके वाद फ्लोरा फाउटेन पर सडक पार करते समय, चर्चगेट पर फास्ट ट्रेन को पकडने के लिए दौडते समय उनकी एक-दो मुलाकाते और हुई और तीसरी मुला-कात मे वे 'टी सेटर' के एयरकडीशण्ड हॉल मे बैठे नीलगिरी की चाय पी रहे थे।

वे चाय भी पीते थे और कॉफी भी। कभी-कभी पिक्चर देखते और कभी दूर-दूर फैले हुए समुद्र-तटो पर डूबते हुए सूरज की पीली-सी क्षितिज के नीचे अपनी शामो को रगीन बनाते रहते। और फिर एक दिन कुलदीप को पता नही क्या सूझा कि वह पूछ बैठा, "तोप, उस दिन तुम्हारे साथ वह आदमी कौन था वह रेस-कोर्स मे ?"

"वो ओ ओ ओ," अपनी कीकती-सी आवाज मे वह 'ओ' को डेढ गज खीच-कर हसी, "वो तो गिल्लू था मेरा कज़िन है। पर साला रेस का दीवाना है।"

वह वात खत्म हो गई। ऐसी वात को जल्दी ही खत्म हो जाना चाहिए। ऐसी बातो का क्या पूछना और क्या सुनना। वस पूछने के लिए पूछ लो और सुनने के लिए सुन लो।

क्योकि तोप ने भी कुलदीप से एक दिन कुछ ऐसी ही वात पूछ ली थी, "दीप, तम वडे झूठे हो ?"

"इस सम्मान के लिए धन्यवाद ! आगे कहिए।"

"यू स्काउण्ड्ल, मुझसे तो उस दिन कहा कि आज दफ्तर मे वहुत काम है। शाम को मिल नही सकूगा और जनाव किसीकी गदराई वाह को थामे जल्दी-जल्दी मैट्रो मे घुसे चले जा रहे थे कौन थी वह लडकी ?"

"धत्त तेरे की ई ई ई " कुलदीप ने 'ई ई ई' को दो गज खीचा और ठहाका लगाकर वोला, "वो तो गिन्नी थी, मेरी कजिन। उसी दिन वह दिल्ली से आई थी। अग्रेज़ी फिल्मो की तो वह वस दीवानी है। आते ही मुझे दफ्तर फोन किया कि आज मैं मैट्रो मे लगी पिक्चर जरूर देखूगी, टिकट मगवाकर रखना। वडी मिन्नत-खुशामद करने पर उस दिन वॉस ने छुट्टी दी।"

दोनो ने एक-दूसरे की वात पर यकीन कर लिया था, क्योकि दोनो यह सम-झते थे कि उनकी वात पर यकीन तभी किया जाएगा जव वे दूसरे की वात पर

यकीन करना दरमाएगे।

अपने 'कजिनो' की बात वे एक-दूसरे को फिर भी सुनाते रहे। एक-दूसरे से मिलने के पहले इन्होंने अपनी जिन्दगी के पूरे सत्ताईस और तेईस वर्ष गुजारे थे। वह भी घर की चहारदीवारी मे नही स्कूल-कॉलेजो मे पढकर और दफ्तरो-स्कूलो मे काम करके। इसलिए दोनो के कुछ चचेरे-ममेरे भाई-बहन तो होने ही थे।

और उस दिन पता नही कुलदीप को क्या हो गया ? बाहर ही बाहर भागने वाला वह कुलदीप पता नही किस छेद से जरा-सा अन्दर झाक गया और एक गहरी उदासी अन्दर के उसी छेद को फोडकर बाहर निकल आई। उसके चारो ओर एक धुआ-सा बिखर गया, एक कोहरा-सा छा गया। ऐसा कोहरा जहा से बाहर की सभी चीजे बहुत धुधली-सी पड गई। उसकी आखे उस धुधलके के उस पार नही देख पा रही थी। उसे कुछ भी दिखाई नही दे रहा था, कुछ भी सुझाई नही दे रहा था। फिर घूम-फिरकर उसकी आखे उसीको देख रही थी। उसकी सूझ को खुद वही सुझाई दे रहा था।

ऐसा उदासी-भरा दिन तो उसे कभी महसूस नही हुआ था। उसे इतनी फुरसत ही कहा थी कि वह उस मनहूस उदासी से जाकर कुछ जान-पहचान करता। देर से सोया हुआ आदमी जल्दी उठता नही, और फिर उठकर शेव करना, नहाना-धोना, और नौ बीस की डबल फास्ट ट्रेन पकडकर दफ्तर पहुचना। दफ्तर मे होता था फाइलो का अम्बार, कलकुलेटिंग मशीनो की टक-टक, बॉस की घटिया, चपरासियो के सदेश और उन सभी से आगे बढकर उसके लिए बजती हुई टेलीफोन की 'किर्र-किर्र' और उसपर फिक्स होता हुआ शाम का प्रोग्राम, कभी सुनीला के साथ, तो कभी अनीता के साथ। कभी उसकी वह लैडलेडी मिसेज पिंटो उसे फोन पर ही फटकारती, "यू रास्कल, हमारा मकान छोडा अउर हमारा आदमी भूल गिआ। तुमकू साला कभी इदर अपना सकल तक बी दिखाना नहीं मागता था ?"

वह बडे क्षमा-याचना के स्वर मे कहता, "रियली वेरी सारी मिसेज पिंटो। हम दफ्तर के काम मे बहुत बिजी था। किसी दिन जरूर आऊगा।"

"किसी दिन नही—आज आना मागता है।" और वह टेलीफोन पर ही अपना स्वर दबा लेती, "आज पिंटो साब बाहर गयला है।"

पर ये सभी उसकी ज़िन्दगी की लोकल गाडिया थी—स्टॉपिंग एट ऑल स्टेशस। और तोष थी फास्ट ट्रेन—नॉट स्टॉपिंग एट माहीम, माटुगा, दादर लोअर परेल, एलफिन्स्टन रोड

इस फास्ट ट्रेन के कारण सभी लोकल ट्रेने उससे नाराज हो रही थी और वे बिल्कुल नाराज़ न हो जाए इसलिए वह कभी-कभी इधर की मुसाफिरी भी कर लेता था ।

ट्रेनो की इस भाग-दौड मे उदासी थी जैसे कालवादेवी और गिरगाव मे घूमने वाली एक पुरानी घोडागाडी ।

उसी उदासी ने न जाने आज कहा से उसके गले मे वाहे आ डाली थी। सुवह से ही एक अजीव शिथिलता वह अनुभव कर रहा था। लॉज के नौकर ने आकर चाय रख दी तो वह रखी ही रही। घडी टिक-टिककर वढती गई तो वह वढते हुए समय को वडी निरपेक्षता से देखता रहा। आठ वजे तक वह शेव कर चुका होता था। सवा आठ वजे तक वह नहाकर वापस आ जाता था। साढे आठ वजे तक शीशे के सामने खडा होकर अपने वाल काढता रहता था। नौ वजे तक वह नाश्ता कर लेता था। नौ वजकर दस मिनट पर वह कपडे पहने हुए, हाथ के वैग को हिलाता हुआ, हलो' हलो पुकारता हुआ लॉज की सीढिया उतर रहा होता था और फिर नौ वीस की फास्ट ट्रेन उसे चर्चगेट उडाए लिए जा रही होती थी।

आज साढे आठ वज गए थे और वह चारपाई से नीचे नही उतरा था। चादर अभी भी उसकी कमर तक थी और उस चादर के ऊपर आज का अखवार औंधे मुह पडा था। वेड टी सिसकिया ले-लेकर ठडी हो चुकी थी।

वह उसी तरह पडा रहा। नौ वीस की चीखती ट्रेन मानो उसे आवाज़े देती हुई निकल गई। उसके चारो तरफ रोज की तरह सव-कुछ दौड रहा था। आज तक इस दौड मे वह खुद भी दौडता था। आज इस दौड को वह एक दार्शनिक की तरह देख रहा था।

कल तोष के साथ वह कौन था टैक्सी मे ? वह वस की दाहिनी ओर की सीट पर वैठा वाहर देख रहा है। तभी सामने से आती एक टैक्सी उसे नजर आती है। उस टैक्सी की पिछली सीट पर एक चेहरा चमकता है अरे, यह तो तोष है वह हाथ वाहर निकालता है 'सि सि तो ओ· ओ' और वह चुप हो जाता

है। उसी सीट पर एक आदमी बैठा है। बीच सडक पर कोई ट्रक अड गया है। ट्रैफिक जाम-सा हो जाता है। इधर से उसकी बस रेंग-सी रही है। उधर से टैक्सी 'भो-भो' करती हुई खिसक रही है · तोप के साथ बैठे आदमी की बाह ने उसकी कमर का घेरा डाला हुआ है और तोप का चेहरा उसी तरह मुस्करा रहा है ·· उसी तरह उसकी दाहिनी गाल पर गड्ढा नजर आ रहा है, जिस तरह जब वह उसके साथ होती है तब होता है। और वह बस की खिड़की के पीछे अपने को छिपाकर उस ओर देखता रहता है। ट्रैफिक चलने लगता है। वह मुडकर देखता रहता है, जहा तक गर्दन मुड सकती है, जहा तक टैक्सी के पीछे के शीशे से तोप और उसके साथ बैठे हुए आदमी के भिडे हुए कधे उसे दिखाई देते रहते हैं।

तोप दरवाजे पर खडी थी, "कमाल है, आज ऑफिस नही गए ? और यह हालत क्या बना रखी है ? तबीयत तो ठीक है न ?"

"बस ऐसी ही " वह मुस्कराया, "आज ऑफिस जाने का कुछ मूड नही हुआ · पर तुम इस समय यहा कैसे ?"

"आज हमारे स्कूल मे एनुअल इन्सपेक्शन था। और उसके बाद छुट्टी हो गई। सोचा शाम को कोई पिक्चर देखी जाए। तुम्हारे आफिस पहुची तो पता लगा हुजूर आज तशरीफ नही लाए ?"

कुलदीप ने देखा, एक बज गया है। वह उठा, मुह-हाथ धोकर उसने खाने का ऑर्डर दिया।

खाना खाकर उन्होंने कॉफी पी। काफी पीकर उसने सिगरेट पी। पर उसकी उदासी अभी भी बिन पिए थी।

"तोप, सुनो, एक बात पूछू तुमसे ?"

तोप ने नजरे उठा ली। भला उससे नई बात क्या पूछी जा सकती है ? और हर पुरानी बात का जवाब उसके पास हाजिर है।

"तोप अच्छा, हम लोगो का आपस मे क्या सम्बन्ध है·· मतलब यह कि हम दोनो आपस मे क्या हैं ?"

क्या अजीब सवाल है ? तोप ने अपने चेहरे पर आश्चर्य जताया, मुस्कराहट फैलाई, "क्या अभी हम लोगो को यह जानना बाकी है कि हमारा आपस मे क्या सम्बन्ध है · हम आपस मे क्या है ?"

कुलदीप को लगा जैसे तोप ने एक मास्टरनी की तरह उसके कान उमेठ दिए है।

वह थोडा समलकर वोला, "तोप, मेरी वात समझने की कोशिश करो। मैं पूछ रहा हू कि क्या हमारे बीच अभी भी वहुत-से पर्दे नही है? वहुत-सी दीवारें नही ह? वहुत-सी अनकही गनवताई वाते नही है? हम दोनो एक-दूसरे मे प्रेम करने का दम तो भरते ही है, पर क्या हम दो अच्छे मित्र भी है? और दो अच्छे मित्र क्या एक-दूसरे के सामने अपना समूचापन लेकर नगे नही हो जाते?"

कुलदीप की वात से तोप थोडा गुमसुम-सी हो गई थी। वोली, "तो तुम समझते हो, हममे कुछ दुराव-छिपाव है?"

"दुराव-छिपाव वाली वात नही, तोप," कुलदीप वोला, "सवाल यह है कि हम एक-दूसरे के सम्मुख अपने को पेश कैसे करते है? देखो, जब तुम मेरे सामने आती हो, क्या तुम इस वात से कान्शस नही होती कि तुम्हे अपने-आपको मेरे सामने कुछ वना-सवारकर पेश करना है? और कुछ नही तो तुम अपने चेहरे पर हल्का पाउडर लगा लेती हो, अपने होठो को हल्की-सी लिपस्टिक से रग लेती हो, झट से अपने वालो पर कघी घुमा लेती हो, साडी की सलवटे दूर कर लेती हो। और मैं भी यही करता हू। आज तुम अचानक यहा आ गई। उस समय मैं न नहाया-धोया था न शेव की थी। इसलिए कुछ वेचैनी-सी महसूस हुई। मतलव यह है कि "

"मैं तुम्हारा मतलव समझ गई।" तोप जैसे डूब-सी गई हो, "यही न कि तुम्हारा मुझपर विश्वास नही है।"

उसकी पलके वोझिल हो गई। उसका गोल चेहरा लम्वूतरा हो गया। पाउडर के नीचे छिपे उसके गालो मे कुछ ढलान-सी आ गई और गहरी लिपस्टिक मे से उसके होठो की सिकुडन झाकने लगी। वह जाने लगी तो कुलदीप न उसका हाथ पकडकर हारी हुई मुस्कराहट से कहा, "ताप ?"

लेकिन तोप का हाथ वर्फ की तरह ठडा था। उसे छुडाकर वह धीरे-धीरे कमरे से निकल गई।

कितने दिन वीत गए, तोप का कोई फोन नही आया। दौडती हुई जिन्दगी मे अन्दर से झाक आई उदासी का एक क्षणिक गतिरोध जो कुलदीप से आ टकराया

था, न जाने कहा विलीन हो गया था। जिन्दगी फिर उसी रफ्तार पर थी। सुनीता और अनीता के फोन आते जा रहे थे, पिंटो साहब बाहर जा रहे थे, मिसेज पिंटो के उलाहनो के साथ यह सूचना उसे बराबर मिल रही थी।

पर तोप का कुछ पता नही था। और तोप का इस तरह चुप हो जाना कुलदीप को खल रहा था। आखिर तोप उसे कभी-कभी बहुत अच्छी कम्पनी देती थी।

एक दिन उसने उसे फोन पर पकड ही लिया, "हलो तोप भई कमाल है। इतने दिन से तुम्हारी कोई खबर नही और यहा हम है कि अपने कानो को टेलीफोन के रिसीवर से बाधे घूम रहे है कि कब तुम्हारी प्यारी-सी आवाज सुनाई दे क्या कहा मै तुम पर विश्वास नही करता अच्छा जी तो मैडम, उस दिन की बात का बुरा माने बैठी है· अरे छोडो भी उस दिन जरा सा दार्शनिक मूड मे आ गया था आई एम वैरी सॉरी तोप तोप, प्लीज फारगेट दैट सच तोप · इतने दिन से तुम मिली नही मेरा बुरा हाल है सच, बहुत बुरा· कब मिल रही हो अरे भाई, अब माफ भी कर दो न कब ? नही, आज · आज शाम को कल का इन्तजार कौन करे दादर स्टेशन पर ? ठीक है बुक स्टाल के पास छ बजे·· ठीक छ बजे अच्छी बात है मै पहुच जाऊगा "

पाम व्यू होटल की दीवार से सटे वे दोनो एक-दूसरे मे खोए हुए थे। आज रेत कुछ ज्यादा ठडी थी और सामने समुद्र की लहरे भी ज्यादा मचल रही थी। आसमान पर नवमी का अधूरा चाद खिला हुआ था। और उसकी चादनी मे कुलदीप ने अपना मुह तोप की गोद मे छिपा लिया था।

तोप ने उसका सिर ऊपर उठाया और गालो को अपनी हथेलियो मे थाम लिया, पर कुलदीप की आखे बन्द थी।

"दीप, आखें खोलो।"

दीप की आखे बन्द थी, "नही तोप आखे तो बन्द ही रहने दो। आखे खोलने से रोशनी दिखाई देती है और यह रोशनी न मुझे अच्छी लगती है न तुम्हे।"

उसने अपना सिर फिर उसकी गोद मे डाल दिया, "तोप, हम लोग उजाले के दुश्मन। हम कहते उजाले की बात है, पर रहना चाहते है अधेरे मे। तोप,

हमारी जिन्स जली हुई है झुलसी हुई है। वह हम किसीको दिखा नहीं सकते, इसलिए हम सब आखे बन्द किए रहते है न तुम्हारा झुलसा हुआ चेहरा मुझे दिखाई दे, न मेरा तुम्हे।"

फिर वह ठहाका लगाकर हस पडा। उस वीराने मे वह आवाज समुद्र की घरघराहट का दबाव लेकर कुछ दूर तक गई और इधर-उधर बैठे दो-एक जोडे कसमसाने-से लगे।

स्वराघात

लाला दुनीचद की जवान बेटी को फिर दिल का दौरा पड गया है। शाम ढल रही थी। कमरे मे बाहर से कुछ ज्यादा ही ढल आई थी। लाला जी, मास्टर सुन्दरदास और सरदार सुच्चासिह 'रमी' मे डूबे हुए थे। 'स्टेक' कुछ ज्यादा नही थी—एक पैसा प्वाइट। फिर भी स्थिति की गभीरता का अहसास उस कमरे के इन तीन बूढो के अलावा अन्य सभी चीजो पर होता हुआ लगता था, क्योकि मास्टर जी ने साढे चार सौ प्वाइट लाला जी और सवा चार सौ प्वाइट सरदार जी पर चढा दिए थे, एक पैसे का अस्तित्व किसीको याद नही था। दोनो को ही लग रहा था कि मास्टर जी ने उनपर साढे चार सौ का कर्ज लाद दिया है। तभी विमला के दौरे की बात वे सुनते है। खेल की गर्मी सौ मील की रफ्तार से भागती हुई गाडी की तरह तेज थी। सब कुछ जैसे एकाएक उमठकर रह जाता है।

विमला मर गई है। उसे बचाने की पूरी दौड-धूप भी नही हो सकी। उसके दो बडे भाई अपने दफ्तरो को गए हुए थे। उसका पति हजार मील दूर कलकत्ते मे था। और तिरसठ वर्ष के लाला दुनीचद बडी मुश्किल से नई बाजारी के उस डॉक्टर की दुकान पर पहुच पाए थे जो उनके घर से तीन फर्लांग दूर थी।

सारे घर और मुहल्ले मे कोहराम मचा हुआ है। विमला की मा छाती पीट-पीटकर रो रही है। लाला दुनीचद गहरी सासे ले रहे है और सूनी-सूनी नजरो से शून्य मे ताक-से रहे है। विमला की भाभिया चीख-चीखकर रो रही है। विमला के भतीजे-भतीजियो की भीड सबको रोता हुआ देखकर रोए जा रही है।

विमला का दाह-सस्कार हो चुका है। उसका पति हवाई जहाज से आ गया था। वह वापस चला गया है। कलकत्ते मे इनकमटैक्स की उसकी बहुत जरूरी तारीख है। बैठक से सोफासेट और पलग निकालकर एक बडी दरी बिछा दी गई

है। लोग मातमपुर्सी के लिए आ रहे हैं।

"लाला जी, विमला का सुनकर बहुत अफसोस हुआ।" पिंडीदास जी ने बाहर जूते उतारे और हाथ जोडे अन्दर आकर बैठ गए।

लाला जी ने बैठे-बैठे हाथ जोडे, सूनी नजरो से उन्हे ताका और बुदबुदाए, "भगवान की मर्जी।"

श्यामलाल जी पिंडीदास जी से दो मिनट पहले ही आए थे और अफसोस प्रकट कर चुके थे। बोले, "पर लाला जी, यह सब एकाएक हो कैसे गया? अभी मैंने उस दिन विमला को देखा था, भली-चगी थी।"

लाला जी उदास आवाज से बोले, "वह दिल की मरीज थी। क्या पता लगता है दिल के मरीज का।"

किसीने कहा, "हा जी, क्या पता लगता है दिल के मरीज का।"

दूसरी आवाज थी, "बडी नामुराद होती है यह बीमारी।"

बात चल पडी है दिल की बीमारी पर।

"पता नही क्या बात है। दुनिया के बडे-बडे लोग दिल की बीमारी से ही क्यो मरते है?"

"पहले यह बीमारी बडी उमर के लोगो को ही लगती थी पर अब तो छोटे-छोटे बच्चे भी इसके शिकार होने लगे है।"

"हा जी, इस जमाने मे तो हम सब वो चीजें देख रहे है जो पहले कभी देखने मे नही आई थी। मेरे एक दोस्त है। उनका लडका अभी कुल आठ साल का है पर दिल की बीमारी से परेशान है बिचारा। अभी पहाड-सी जिन्दगी है उसके सामने।"

"पर अब तो सुना है, अमेरिका मे दिल की बीमारी का बहुत अच्छा इलाज होने लगा है। वहा खराब दिल निकालकर बनावटी दिल लगा दिया जाता है और

को भी कितनी छोटी उमर मे दिल की बीमारी लग गई थी। जब उसे दौरा पडता था, सारा घर परेशान हो उठता था। कितनी बार उन्हे दफ्तर छोड़कर भागना पडा था। विमला बडी होती गई, बीमारी भी बढती गई। वह हायर सेकेंडरी की परीक्षा मे तीन बार फेल हो गई थी। एक बार हिसाब के पर्चे के दिन उसे दौरा पड गया था। दूसरे साल उसे अगेजी के पर्चे के समय और तीसरी बार तो वह बस एक ही पर्चे मे बैठ पाई थी।

फिर विमला की पढाई छूट गई। ऐसी नामुराद बीमारी वाला कैसे पढ पाएगा ? विमला की उम्र बीस साल की हो गई। उसके विवाह का सवाल सारे घर के लिए सवालिया निशान बन गया। यह किसे नहीं मालूम था कि विमला दिल की बीमारी की शिकार है। बात चलती और टूट जाती। हर बार बात का शुरु होना सिर पर रखे बोझ का हल्का-सा हिलना था। और हर बार बात का टूट जाना सिर पर धक्के से बोझ का पलट दिया जाना था। लाला जी की गरदन जैसे उस बोझ से टूटने-सी लगी थी।

विमला का विवाह कलकत्ते मे हो गया। वह मुश्किल से वहा तीन महीने रही और अब उसे मायके आए छः महीने गुजर चुके थे। कुछ पता नहीं था कि विमला का घर कौन-सा है। लाला जी रिटायर हो चुके थे। बाहर के कमरे म अखबार पढते या रमी खेलते हुए लाला जी हर क्षण महसूस करते, विमला फर्श पर बेहोश पडी है' कोई बच्चा दौडता हुआ आने वाला है कुछ खबर देने।

घर के अन्दर से किसी बच्चे के उनकी तरफ आने की आहट आती तो वे चौंक जाते। उनकी पत्नी या बहुओ की चूडियों की आवाज कहीं पास से सुनाई दे तो उनके कान खडे हो जाते। और फिर उन्हे पता लगता, विमला को दौरा पड गया है।

वे बुझे कदमों से उठते। धीरे-धीरे अन्दर जाते, विमला को देखते, फिर डॉक्टर को बुलाने चल देते।

यह कितनी बार हो चुका था। और उन्हे बार-बार लगता था—इस बार उन्हे ऐसी खबर मिलेगी कि वे डॉक्टर को भी बुलाने नहीं जा पाएगे। वे फिर आगे कुछ नहीं सोच पाते। एक धुध-सी उनके दिमाग मे भर जाती।

विमला मर गई तो उन्हे लगा कुछ वैसा ही लगा कुछ-कुछ वैसा ही जैसे · जैसे प्लेटफार्म पर घंटो से बैठे प्रतीक्षा करने वाले मुसाफिर की गाडी

आ गई हो।

शाम के छह बज चुके है, पर बाहर धूप ऐसी है जैसे अभी चार भी नहीं बजे हो, प० दीनदयाल के चेहरे पर दफ्तर की दिन-भर की थकान की परत खासी गहरी है। उसपर चार मील की साइकिल की खिचाई की परत और चढ गई है। एक कोने मे साइकिल रखकर उन्होने पसीना पोछा और झट से विमला की मौत की एक परत और चढा ली।

"लाला जी बहुत अफसोस हुआ।"

कमरे मे मातम करने आए सात-आठ लोग बैठे है। दो कोनो मे लाला जी के दोनो बेटो के सिर झुके हुए है। सुबह के दोनो अखबार अलग-अलग पन्नो मे सारे कमरे मे बट गए है। और सिर झुकाए लोग उन्हे बडे निर्लिप्त भाव से पढ रहे है। उनके पढने के ढग से लग रहा है कि वे अखबार पढ नही रहे है सिर्फ उसपर नज़रे फिरा रहे है, वैसे ही जैसे बैठे-बैठे कुछ लोग दरी पर अपनी उगलिया फिरा रहे है या इधर-उधर निकले हुए दरी के धागो को बट रहे है, खोल रहे है।

लाला जी की नज़र भी अखबार के एक पन्ने पर उसी तरह फिसल रही थी। प० दीनदयाल की आवाज सुनकर उनकी नजर उठी। उन्होने हाथ जोडे और फुसफुसाए, "परमात्मा के आगे किसका ज़ोर है • ।"

प० दीनदयाल एक कोने मे बैठ गए। लाला जी की नजर फिर अखबार पर झुक गई है। वे किसी डाके की खबर पढ रहे हैं। डकैतो ने कही हमला किया था। घर के मर्द तो डर से दुबक गए पर घर की एक स्त्री ने एक डाकू की एक बाह कसकर पकड ली थी।

आगे क्या हुआ !

लाला जी अखबार के उस टूटे सूत्र को ढूढ रहे है।

प० दीनदयाल महसूस कर रहे हैं कि उन्हे मातमपुर्सी के लिए पहले ही आना चाहिए था। विमला को गुजरे आज तीन दिन हो रहे है। वे बात चलाते है, "दिल्ली मे बसो का सिस्टम तो बहुत ही खराब है। घटे-घटे-भर खडे रहो, बस ही नही मिलती। मैं कल दफ्तर साइकिल नही ले गया था। छुट्टी होने पर सोचा यहा आऊ पर डेढ घटे तक धक्कमधक्का करने पर भी इधर की बस नही मिली।"

"बस, बसो की कुछ न पूछिए। बस वाले सिर्फ किराया बढाना ही जानते है।

जनता के सुख-दुख का उन्हे रत्ती-भर ख्याल नही।"

"बस-सिस्टम तो बम्बई का है। हर आदमी चुपचाप आकर लाइन मे खड़ा हो जाता है, चाहे लाइन मील-भर लम्बी क्यो न हो। वक्त से बस आती है और बडे मजे से सबको जगह मिल जाती है। न धक्का न मुक्का।"

बात को बस मिल गई है और वह आगे बढ रही है। बस के स्टाप से महगाई के स्टाप तक, महगाई से देश मे फैले हुए भ्रष्टाचार, भ्रष्टाचार से राजनीति की दलबन्दी, वहा से पूजीपतियो और समाजवादियो तक और फिर धीरे से निकलकर वह विदेशी राजनीति की दुनिया तक पहुच गई है।

जब से विमला मरी है लाला जी ने अच्छी तरह अखबार नही पढा है। सुबह होते ही मातमपुर्सी करने वाले लोग आ जाते है। और फिर यह तांता लगा ही रहता है। लडके दफ्तर चले जाते है। औरते अन्दर मातम करने के लिए आई औरतो के गले लगकर रोती है और लाला जी हर आने वाले के शोक-प्रदर्शन का उत्तर देते है—'भगवान की मर्जी, परमात्मा की इच्छा', या फिर वे एक ठडी सांस लेकर, अपने हाथ हिलाकर कुछ बुदबुदा देते है।

आजकल एक चीज उन्हे बहुत सता रही है—अखबार। घर मे दो अखबार आते है—एक अग्रेजी का, एक उर्दू का। उनके लडके उन्हे दो-दो मिनट देखकर दफ्तर की तैयारी करने लगते है। और लाला जी पहले उर्दू अखबार हाथ मे लेते। उसके खुरदुरे कागज को उनकी उगलिया छूती तो आत्मिक तृप्ति से उनका शरीर भर जाता। उर्दू अखबारो जैसा खबरो का चटपटापन और कहा? फिर [illegible] [illegible] से लिखा हुआ सम्पादकीय, कुछ सपादकीय टिप्पणिया, [illegible] और सबके जरिये से देशी-विदेशी मामलो पर डाली हुई रोशनी [illegible] रते।

फिर वे अग्रेजी अखबार उठाते। उसके कागज का [illegible]-सा [illegible] ऐसा लगता जैसे वे किसी मेम के शरीर का स्पर्श-सुख पा रहे हो।

उनका यह अखबारी मुताला दो-तीन बैठको मे पूरा होता था। और [illegible] बाद का समय कटता था 'रमी' मे मास्टर सुन्दरदास और [illegible] के साथ।

लोग बातचीत कर रहे हैं और अखबारो के पन्ने इधर-उधर [illegible]। लाला जी का मन बार-बार कर रहा है कि वह सब पन्ने समेट ले, [illegible]

लगा दे और फिर सभी के सामने मसनद से उढककर पटने लग जाए।

परन्तु वे ऐसा नही कर सकते। सामने बैठे हुए लोग उनकी बेटी की मौत पर मातमपुर्सी करने के लिए आए हुए ।

विमला की अस्थिया जमुना मे प्रवाहित की जा चुकी हैं। मातम के लिए आने वालो का सिलसिला कुछ कम हो गया है। चार दिन से बराबर रोते-रोते विमला की मा की आखे सूज गई हैं। सुबह-सुबह ही उसने लाला जी को याद कराया है, "देखो जी, दिन-भर तो बात करने का ज़रा भी मौका नही मिलता। अफसोस के लिए आने-जाने वालो का ताता लगा रहता है। विमला की 'किरिया' के कार्ड तो आज लिख दीजिए। आज-कल मे न भेजेंगे तो लोग वक्त से कैसे पहुचेंगे। दूर से आने वालो को तो सौ इन्तज़ाम करने पडते हैं।"

"किरिया कब करनी है?" लाला जी पूछते हैं।

"तेरहवा तो अगले मगलवार को पडेगा।" विमला की मा दिन गिनकर हिसाब लगाती है।

लाला जी सोचते है, आज इतवार है। इतवार से लेकर इतवार, फिर सोमवार और मगलवार। किरिया को अभी बहुत दिन बाकी है।

"सुनो!" लाला जी पूछते हैं, "किरिया ग्यारहवें दिन भी तो हो जाती है?"

विमला की मा कुछ सोचती है, "हा लोग ग्यारहवे दिन भी कर लेते है। पर करनी तो तेरहवे दिन ही चाहिए।"

"तुम मेरा मतलब नही समझी।" लाला जी समझाते है, "मगलवार काम-काज का दिन है। सारे मिलने-जुलने वाले ठीक तरह से आ भी नही सकेंगे और लडको को भी नाहक दफ्तर से छुट्टी लेनी पडेगी। ग्यारहवा पडता है इतवार को। छुट्टी के दिन अच्छी तरह से सब काम हो जाएगा। लोगो को आना भी आसान रहेगा।"

बात विमला की मा की समझ मे आ गई है, "जैसी आपकी मर्ज़ी · पर कार्ड आज ही लिख दीजिए।"

लाला जी बाहर के कमरे मे पहुचकर देखते है, सुच्चासिह आए हुए है। उनके मुह से झट से निकल पडता है, "विमला की किरिया अगले इतवार को ही कर रहे हैं। वैसे तेरह दिन मगल को पूरे होंगे। पर सोचा किरिया ग्यारहवे दिन ही कर

दे। छुट्टी के दिन सारे बिरादरी वाले आसानी से आ जाएगे।"

उन्हे लगता है कि यह कितनी अच्छी बात हुई है कि ग्यारहवा दिन इतवार को पड गया है। नही तो किरिया तेरहवे दिन होती।

फिर उन्हे लगता है कि सुच्चासिह से जो बात उन्होने कही है उसमे उनका उत्साह कुछ ज्यादा ही फूटा पड रहा था।

वे मुह लटका लेते है, एक ठडी सास लेते है और गमगीन होकर सुच्चासिह के पास बैठ जाते हैं।

लकीरो वाला मकान

मैंने बहुत-से मकान देखे हैं—मिट्टी वाले मकान, ईंटो वाले मकान, लकड़ी वाले मकान और पत्थरो वाले मकान भी। परन्तु जिस मकान की बात मैं अभी करने जा रहा हू उसका दूसरे मकानो से अन्तर उस तरह साफ नही होगा। मुझे यू कहना चाहिए कि मैंने बहुत-से मकान देखे है—वे मकान जिनके दरवाजो पर हाथ मे डडा लिए पहरेदारो की मूर्तिया खडी रहती है। वे मकान जिनकी मेहराब मे फूल-पत्तियो की नक्काशी शुरू होती है और फिर मकान के अदर-बाहर सभी तरफ नक्काशी ही नक्काशी नजर आती है। वे मकान जिनकी दीवारो पर सीन-रियो की तस्वीरे उभरी होती है। और ज्यादातर वे मकान ही जिनपर बाहर-अन्दर की दीवारो पर कुछ भी नही होता, सिर्फ दीवारे होती हैं, लम्बी, ऊची, सपाट दीवारे और उन दीवारो के पीछे से उनमे रहने वालो की सीधी-सरल सपाटता झाकती रहती है।

मैं भी एक ऐसे ही मकान मे रहता हू। पर एक दिन मैं एक लकीरो वाले मकान मे पहुच जाता हू।

राजा साहब से मैंने वक्त ले रखा है। बाराखम्बा रोड पर कोठियो का नम्बर देखता-देखता जब मैं उनकी कोठी के दरवाजे पर खडा होता हू तो शरीर मे एक झुरझुरी-सी छूट जाती है। वैभव देखकर मैं घबराता नही हू। दूर खडे होकर या अन्दर खडे होकर मैंने बडे से बडा वैभव देखा है, परन्तु इस प्रकार के राजसी वैभव से मुझे जरूर कुछ डर लगता है। मेरी एक लाटरी खुल जाए तो अमीरी ढग का वैभव मुझे भी क्षण-भर मे मिल सकता है। पर राजाओ वाला वैभव पैसे से नही, एक खास तरह की ठमक से बनता है और यह ठमक मुझमे तब तक नही आ सकती जब तक कोई राजा मुझे गोद न ले ले। और भला आज के जमाने मे कोई राजा मुझे गोद क्यो लेने लगा जब कि आज वे खुद ही बेगोद हो रहे है।

कोठी के बाहर के लॉन के बीचो-बीच की सड़क पर लाल बजरी पडी हुई

है। वाई ओर के खुले हिस्से मे तीन-चार वडी-वडी चमकदार गाडिया खडी है। और लकालक सफेद वर्दियो वाले शोफर सिगरेट का धुआ उडाते हुए आपस मे गप्पे हाक रहे है। लॉन के किनारे-किनारे फूलो की क्यारिया है और उनके पास की जमीन गुडी हुई है। मिट्टी की सोंधी गध चारो ओर फैल रही है।

मैं देखता हू, सामने पोर्टिको के दाहिने सिरे पर मेज पर टेलीफोन रखा हुआ है और वही कुर्सी पर एक कर्मचारी बैठा हुआ रजिस्टर मे कुछ लिख रहा है।

"मुझे राजा साहब से मिलना है।"

वह मेरी ओर देखता है तो अनायास मेरा हाथ अपनी टाई की नाट पर चला जाता है। मैं कोट की कालरो पर हाथ फेरता हू और उसे नीचे से खीचता हू। मेरा एक हाथ पैंट की जेब मे चला जाता है।

"आप उधर बैठिए। मैं अभी पता लगाता हू।" वह कहता है।

मैं दीवार के साथ लगे एक सोफे पर बैठता हू, और फिर झट से उठ खडा होता हू। एक वावर्दी चोबदार मेरे सामने खडा है और बहुत झुककर कह रहा है, "हजूर, आप अन्दर बैठिए।"

मैं उसके पीछे हो लेता हू। थोडी देर के लिए ऐसा लगता है जैसे मैं किसी छोटे-से राज्य का दूत हू और मुझे बकिघम पैलेस मे महारानी एलिजाबेथ के सामने पेश किया जा रहा है।

गैलरी मे, कालीन पर लालो की नसो को सिकोडकर मैं अपने जूते दुखाता हू और जब वह एक जालीदार दरवाजे को खोलकर बडी इज्जत से एक ओर खडा हो जाता है तो अचकचाकर उसकी ओर देखता हू।

मुझे अन्दर प्रवेश करना है।

मैं हल्के भूरे रग के मखमली पर्दे को हटाकर अन्दर घुसता हू। अन्दर एक और सज्जन बैठे है। मुझे बडी राहत मिलती है। दो लोग बैठकर प्रतीक्षा करना। कुछ आपस मे बातचीत करेंगे तो उस ड्राइग हाल के वैभव से आतकित होने के बजाय हम उसे झुठलाएगे। आजकल राजाओ की जो गति हो रही है उस पर टीका-टिप्पणी करेंगे और अन्त मे इस निर्णय पर पहुचेंगे कि राजाओ-महाराजाओ के दिन अब निकल गए हैं। अब तो ये लोग खाली अपना नाम लिए फिर रहे है।

मैं उनके पास ही लम्बे सोफे पर बैठ जाता हू। वे मुसकराकर मेरी ओर देखते है, "आप राजा साहब से मिलने आए है?"

"जी ।" मै कहता हू ।

"अन्दर एक मीटिग चल रही है ।"

मै अन्यमनस्क होकर ड्राइग हॉल की चीजे देखने लगता हू । चारो ओर दीवारो से लगे हुए सोफे, उनकी मखमली झालरे, उनपर रखी रग-विरगी चौकोर और गोल गद्दिया ।

वे पूछते है, "आप क्या काम करते है ?"

वैसे यह सवाल वडी परेशानी मे डालने वाला है । परन्तु अपने यहा इसे वडी सहजता से पूछ लिया जाता है, वैसे ही जैसे, 'आपकी घडी मे इस समय क्या वजा है ?'

मैं वता देता हू ।

मैं जानता हू कि वे नाम भी पूछेगे और राजा साहव से मैं क्यो मिलने आया हू, यह भी पूछेंगे ।

यह सव कुछ वताने के वाद मेरा फर्ज हो जाता है कि उनसे भी कुछ इसी ढग की वाते पूछू ।

उनका नाम है जत्थेदार सुलतानसिह और वे राजा साहव से नही वलिक राजा साहव की मीटिग मे वैठे किन्ही सरदार वहादुर सरदार प्रीतमसिह से मिलने आए है । पर चूकि यह नाम सुनकर मेरे चेहरे पर कोई खास वात वे नही देख पाए है इसलिए उनका अगला सवाल वहुत वाजिव है, "आप सरदार वहादुर सरदार प्रीतमसिह को नही जानते ? वहुत वडे ठेकेदार है । आधी नई दिल्ली उन्हीकी वनाई हुई है ।"

उनकी वाते सुनते हुए मैं उनकी तरफ देख रहा हू । उनकी काली दाढी और मूछो की जडो से सफेदी निकली हुई है । सावले माथे पर लम्वी-लम्वी लकीरे गहरी हो गई है । खद्दर की नीली पगडी, वादामी रग का खद्दर का कुर्त्ता और उस-पर चारखाने वाली खद्दर की सदरी उनके स्थूल हो रहे शरीर को ढके है ।

मुझे इस तरह अपनी ओर देखते हुए देखकर वे मुस्करा देते हैं । मूछो से ढके सूखे होंठो पर थिरकन होती है और वोझिल पलको से ढकी छोटी-छोटी आखें चमकने लगती है ।

मैं देखता हू, यह चेहरा मेरा कितना पहचाना हुआ है । इस तरह की मुस्कराहट हमारे यहा की सभी राजनीतिक-सामाजिक सस्थाए वेचती है और हर गली-कूचे

मे ऐसे मजीदा चेहरे नजर आते रहते है।

सारे ड्राइग हॉल मे एक ही कालीन बिछा है। लाल रग के इस कालीन पर बीचो-बीच दो लम्बी-हरी लकीरे खिची हुई है। फिर दाई-बाई ओर वैसी ही लकीरे छोटी होती चली गई है। एक के बाद दूसरे का रग भी बदलता गया है।

बगल के दरवाजे से नौकर आकर हमारे सामने दो बडी प्लेटे एक मेज पर सजा देता है। दो फ्राइ किए हुए अडे, दो सिके और मक्खन लगे टोस्ट, कटलेट, फिगर चिप्स, थोडा-सा सलाद, एक छोटी-सी कटोरी मे टमैटो सास।

मैं कहता हू, 'मैं नाश्ता करके आया हू। मैं कुछ नही खाऊगा। मुझे एक गिलास पानी पिलाओ।'

नौकर प्लेटो के बाहर छुरी-काटो को सजाता हुआ मुस्कराता है, और मुझे उससे रश्क होता है—हद हो गई। इस घर के तो नौकर भी इतनी मजी हुई मुस्कराहट मुस्कराते है।

वह कहता है, "साथ मे चाय लेगे या कॉफी ?"

जत्थेदार जी तपाक से कहते है, "मेरे लिए तो एक गिलास दूध ले आना।"

नौकर फिर मुस्कराता है। और इस बार मुझे उसकी मुस्कराहट पर खासी खीझ होती है।

वह मेरी ओर देख रहा है।

मैं कहता हू, "मुझे एक प्याली चाय पिला दो, और यह नाश्ता ले जाओ।"

जत्थेदार जी जोर से कहते है, "जाओ जी जाओ, तुम अपना काम करो।"

फिर मेरी ओर मुडते है, "खाओ जी खाओ। सादा-सा तो नाश्ता है और आप लडकियो की तरह नखरे कर रहे है।"

नौकर मुस्कराता हुआ चला जाता है।

"आप भी अजीब है।' जत्थेदार जी मुस्कराते हुए कहते है, "भगवान की चीजो से इन्कार करते है ? फिर इन लोगो के सामने तो कभी इन्कार नही चाहिए।"

'पर जत्थेदार जी, मै तो नाश्ता करके आया हू।'

"इससे क्या होता है जी, अच्छा बताइए—[illegible] नाश्ते मे ?"

मैं कहता हू, '[illegible]।"

"बस । मै चार अडो की भुर्जी खाकर आया हू । और क्या खाया है तुमने ?"

"दो टोस्ट ·"

"और मै खाके आया हू दो इतने बडे-बडे परावठे छटाक-छटाक-भर घी वाले ।· अच्छा, चाय के कितने प्याले पिए है तुमने सुबह से ?"

"दो प्याले ।"

"और मै सुबह से छ पी चुका हू पर जब कभी मै किसी ऐसे घर मे पहुचता हू तो वहा चाय नही पीता ।"

बातचीत करते-करते जत्थेदार जी आधी से ज्यादा प्लेट साफ कर चुके है और मै अभी वह कोना ही पकड रखता हू जिधर से मुझे शुरु करना है ।

थोडी देर मे मेरे लिए चाय और जत्थेदार जी के लिए दूध आ गया है ।

प्लेट साफ करके वे सुड-सुड करके दूध पीना शुरू करते है । एकाएक उनकी नज़र मेरी प्लेट की ओर जाती है तो वह हस पडते है ।

मैंने टोस्ट का बीच-बीच का भाग खा लिया है और लकडी की तरह के सख्त किनारे छोड दिए है ।

"क्या कागज़ी नौजवान है आज के लोग । तुम्हारी उमर मे तो मै कच्चे चने चबा जाया करता था ।"

एकाएक हमारे दाहिने ओर की गैलरी मे कुछ हलचल-सी होती है और जत्थेदार जी झटपट उधर लपक लेते है । शायद उनके सरदार बहादुर उधर से निकले है ।

मै भी अपनी पगडी को एक बार दबाता हू, टाई की नॉट पर हाथ फेरता हू, गरदन इधर-उधर हिलाता हू और जेब से सलाई निकालकर एक-आध इधर-उधर निकले हुए दाढी के बालो को जाली के अन्दर करता हू ।

नौकर प्लेटे उठा रहा है ।

मैं पूछता हू, "मीटिग खत्म हो गई ?"

वह कहता है, "एक-दो साहब लोग ही अभी गए है । बाकी तो उसी कमरे मे बैठे है । उनके लिए लच लग रहा है ।"

"ओह ।"

वह प्लेटे लेकर जा रहा है । मेरा मन करता है कि उसे वापस बुलाऊ और

कहू, "मुझे एक प्याली गर्म-गर्म कॉफी पिलाओ।"

मैं अपनी टागे थोडा और फैला लेता हू और सिर पीछे टिका लेता हू। यह छत भी कैसी है? पहले एक छत, बीच मे एक बडा-सा होल, उसके ऊपर एक और छत और उसी छत मे रोशनी छन-छनकर उस होल के बाहर गिर रही है। दीवारो से भी रोशनी छन-छनकर निकल रही है और उसकी [illegible] लकीरे दीवारो पर छितरी पडी है।

मैं उन लकीरो को गिनना शुरू कर देता हू। पहले दाये से बाये गिनता हू, फिर बाये से दाये। एक-एक करके सभी दीवारो की उन लकीरो को मैं गिन डालता हू।

चारो ओर लकीरे ही लकीरे तो बिखरी है।

एक नौकर गैलरी से निकल रहा है। मैं इशारे से उसे बुलाता हू, "राजा साहब क्या कर रहे है?"

"कुछ बडा-बडा मेहमान लोग आया है। उनके साथ अभी खाने पर बैठे है सा'ब।"

मैं घडी देखता हू। साढे ग्यारह बज चुके है। राजा साहब ने मुझे दस बजे का समय दिया है। आज उनके यहा बडे-बडे लोग आए हुए है। [illegible] कैडिलक गाडियो वाले, बडे-बडे सूट और पूछदार नामो वाले।

मैं डेढ घटे से बैठा उनके राजसी ड्राइग हाल की लकीरे गिन रहा हू।

मेरी नजर फिर दीवारो और छत पर दौड रही है। और मैं देखता हू, जहा मैं बैठा हू वहा रोशनी की एक बहुत ही छोटी लकीर गिरी है।

पर अपने घर मे जहा मैं बैठता हू वहा सुबह की [illegible] की एक [illegible] सी लकीर रोशनदान से निकलकर गिर जाती है।

एक नौकर से मैं अखबार लाने को कहता हू। कुछ देर बाद वह [illegible] पुराना अखबार जाने कहा से ढूढकर मुझे पकडा जाता है। मैं [illegible] को फिर से पढने लगता हू।

तभी एक आवाज सुनाई देती है, "जी, मै अन्दर आऊ?"

दरवाजे के बाहर खाकी पैट, खाकी कमीज पहने और [illegible] लगाए, वह खडा है।

अखबार एक ओर हटाकर मैं उसकी ओर देखता हू, "[illegible]?"

"जी हज़ूर, आपने वो मशीन देखने के लिए बुलाया था न।" वह मेरे पीछे की ओर इशारा करता है।

मैं मुडकर देखता हू। वहा एयरकडीशनर लगा हुआ है।

"इसे देखना है?"

"जी हज़ूर ।"

"देखो।"

वह जूते बाहर उतार देता है। अपने पैरो को वही दो-तीन बार रगडता है और एक थैली मे से पेचकस निकालता हुआ अन्दर आता है।

एयरकडीशनर के आगे सोफा बिछा हुआ है। मैं थोडा दाईं ओर खिसक जाता हू।

लगता है मेरी उपस्थिति से यह बहुत घबराया हुआ है। वह सोफे के ऊपर से झुककर उस मशीन को देखने की कोशिश कर रहा है।

वह फिर बडी दीनता से मेरी ओर देखता है, "हज़ूर, बेअदबी माफ हो तो··· जरा मैं इस सोफे के ऊपर से मशीन देख लू।"

मैं बडे रोब से गरदन को ज़रा-सा हिला देता हू, "देख लो।"

वह घुटनो के बल सोफे पर खडा होकर मशीन के पेच खोलने लगता है।

मैं जरा और तनकर बैठ जाता हू। दोनो हाथो से अखबार थामकर उसे पढने लगता हू, जैसे मैं अखबार पढने के लिए ही वहा बैठा हुआ हू।

और अब उस छोटी लकीर के पास मैं नही हू—उस लकीर के पास अब वह है।

कहू, "मुझे एक प्याली गर्म-गर्म कॉफी पिलाओ।"

मैं अपनी टागे थोडा और फैला लेता हू और सिर पीछे टिका लेता हू। यह छत भी कैसी है? पहले एक छत, बीच मे एक बडा-सा होल, उसके ऊपर एक और छत और उसी छत से रोशनी छन-छनकर उस होल के बाहर बिखर रही है। दीवारो से भी रोशनी छन-छनकर निकल रही है और उसकी छोटी-बडी लकीरे दीवारो पर छितरी पडी है।

मैं उन लकीरो को गिनना शुरू कर देता हू। पहले दाये से बाये गिनता हू, फिर बाये से दाये। एक-एक करके सभी दीवारो की उन लकीरो को मैं गिन डालता हू।

चारो ओर लकीरे ही लकीरे तो बिखरी है।

एक नौकर गैलरी से निकल रहा है। मैं इशारे से उसे बुलाता हू, "राजा साहब क्या कर रहे है?"

"कुछ बडा-बडा मेहमान लोग आया है। उनके साथ अबी खाने पर बैठे हैं सा'ब।"

मैं घडी देखता हू। साढे ग्यारह बज चुके थे। राजा साहब ने मुझे दस बजे का समय दिया है। आज उनके यहा बडे-बडे लोग आए हुए थे। बडी-बडी कैडिलक गाडियो वाले, बडे-बडे मूछ और पूछदार नामो वाले।

मैं डेढ घटे से बैठा उनके राजसी ड्राइग हॉल की लकीरे गिन रहा हू।

मेरी नज़र फिर दीवारो और छत पर दौड रही है। और मैं देखता हू, जहा मैं बैठा हू वहा रोशनी की एक बहुत ही छोटी लकीर खिची है।

पर अपने घर मे जहा मैं बैठता हू वहा सुबह नौ बजते ही धूप की एक लम्बी-सी लकीर रोशनदान से निकलकर खिच जाती है।

एक नौकर से मैं अखबार लाने को कहता हू। कुछ देर मे वह एक तीन दिन पुराना अखबार जाने कहा से ढूढकर मुझे पकडा जाता है। मैं पढी-पढाई खबरो को फिर से पढने लगता हू।

तभी एक आवाज सुनाई देती है, "जी, मैं अन्दर आऊ?"

दरवाज़े के बाहर खाकी पैंट, खाकी कमीज पहने और मैली सी टोपी लगाए वह खडा है।

अखबार एक ओर हटाकर मैं उसकी ओर देखता हू, "क्या है?"

"जी हजूर, आपने वो मशीन देखने के लिए बुलाया था न।" वह मेरे पीछे की ओर इशारा करता है।

मैं मुडकर देखता हू। वहा एयरकडीशनर लगा हुआ है।

"इसे देखना है?"

"जी हजूर ।"

"देखो।"

वह जूते बाहर उतार देता है। अपने पैरो को वही दो-तीन बार रगडता है और एक थैली मे से पेचकस निकालता हुआ अन्दर आता है।

एयरकडीशनर के आगे सोफा बिछा हुआ है। मैं थोडा दाई ओर खिसक जाता हू।

लगता है मेरी उपस्थिति से यह बहुत घबराया हुआ है। वह सोफे के ऊपर से झुककर उस मशीन को देखने की कोशिश कर रहा है।

वह फिर बडी दीनता से मेरी ओर देखता है, "हजूर, बेअदबी माफ हो तो··· जरा मै इस सोफे के ऊपर से मशीन देख लू।"

मैं बडे रोब से गरदन को जरा-सा हिला देता हू, "देख लो।"

वह घुटनो के बल सोफे पर खडा होकर मशीन के पेच खोलने लगता है।

मैं जरा और तनकर बैठ जाता हू। दोनो हाथो से अखबार थामकर उसे पढने लगता हू, जैसे मै अखबार पढने के लिए ही वहा बैठा हुआ हू।

और अब उस छोटी लकीर के पास मैं नही हू—उस लकीर के पास अब वह है।

कछुए

अभी इंडस्ट्रियल एरिया का चौराहा पार करके हम कुछ ही आगे बढ़े थे कि पानी तेज हो गया। मनजीत ने पूछा, "क्यों, छाता खोल लूँ?"

मैंने कहा, "खोलो। देखें, कुछ बचत होती है या नहीं?"

स्कूटर की पिछली सीट पर बैठे-बैठे ही उसने छाता खोला और मेरे सिर के ऊपर लाने की कोशिश में आँखों के आगे तक ले आया। मैंने चीखकर कहा, "ऊपर उठा, ऊपर। नहीं तो किसीसे भिड़ जाऊँगा।"

वह हँसा। मनजीत की हँसी मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगती। ऐसे हँसता है मानो छाती कूट-कूटकर हँसी उगल रहा हो। हँसना तो उन्हें आता है जो हँसते रहते हों। वह तो साल में चार-छः बार हँसता है और तब ऐसा लगता है जैसे तबले से सारंगी की धुन निकाली जा रही हो।

छाता उठकर काफी पीछे जा चुका था। पता नहीं उससे उसकी पगड़ी गीली होने से बच रही थी या नहीं, परन्तु मेरी पगड़ी पूरी तरह गीली हो चुकी थी और छाते की नोक बार-बार उसमें चुभ रही थी।

फिर पानी के साथ हवा भी काफी तेज हो गई। छाता उल्टा होता जा रहा था। मैंने स्कूटर धीमा किया और उसने किसी तरह उसपर काबू पाकर उसे बंद दिया।

अब हम दोनों भीग रहे थे। पानी मेरी आँखों पर पड़ रहा था और मैं कभी क्लच और कभी एक्सीलरेटर वाला हाथ छोड़कर आँखें पोंछ लेता था।

तभी न जाने किस बात को लेकर मैं उसपर तल्ख हो उठा। मैंने अपने पुराने आरोप फिर दोहराने शुरू कर दिए, "तुम बड़े स्वार्थी हो, सिर्फ अपना सोचने वाले—सेल्फ सेंटर्ड। तुम समझते हो कि जो भी तुम्हारा मित्र है, तुम्हारा निकट है, उसने सिर्फ तुम्हारे लिए सोचने और कुछ करने के लिए ही जन्म लिया है। और तुम्हारा काम है सिर्फ अपने बारे में सोचना।"

वह चुप था। आज मैं उसका चेहरा नही देख सकता था, परन्तु ऐसे अवसरो का उसका चेहरा मुझे याद है। ऐसे मौको पर वह अपना चश्मा उतारकर अपनी आखे पोछता है और उन्हे मिचमिचाते हुए मेरी ओर देखता है। उस समय उसके होठो पर एक अजीब-सी गोलाई आ जाती है, उसकी छोटी-सी फिक्म दाढी के दो-चार उखडे हुए बाल बडे साफ-साफ नजर आने लगते है और बगैर चश्मे के सूनी लगने वाली आखे किसी बच्चे की आखो की तरह अबोध और तरल हो जाती है।

वह पीछे से बहुत रुक-रुककर बोला, "जैसा हू वैसा नया तो नही हू। पिछले अठारह सालो से यह बात तुम कितनी बार कह चुके हो, मैं सुन चुका हू और मान भी चुका हू।"

अपने आरोपो के सबध मे उसकी यह निरपेक्षता देखकर मैं झल्ला उठा, "तुम्हारे सुन लेने और मान लेने से ही तो समस्या हल नही हो जाती। एक जमाना था कि तुम्हारा यह स्वार्थी रुख मैं सहन कर लेता था, पर आखिर हर बात की एक हद होती है। और अब, जब तुम सब कुछ कर सकने की स्थिति मे हो, तुम्हारा यह एकागीपन कभी-कभी मुझे बहुत खलता है।"

मुझे लगा कि मुझे उसके स्वार्थी रुख के दो-चार उदाहरण सुनाकर अपनी बात पुष्ट करनी चाहिए। इसीलिए मैंने उसके सामने फिर वही घटनाए दोहराईं जो इससे पहले भी मैं उसे कई बार सुना चुका था।

मनजीत पर जब कभी मैं इस प्रकार नाराज होता हू, मैं अनायास बहुत कटु हो जाता हू। वह बिल्कुल चुप हो जाता है। प्रत्युत्तर मे कुछ नही कहता और मैं कहता ही जाता हू। मुझे उसका चुप हो जाना उसकी चालाकी मालूम होती है, बुरी तरह खलती है और खीझ पैदा होती है। मै अपनी खीझ मिटाने के लिए बकता ही जाता हू।

एकाएक मुझे महसूस हुआ कि स्कूटर की चाल धीमी पड रही है। मैंने सडक के किनारे के एक पेड के पास उसे रोका।

उसने पूछा, "क्यो, क्या हुआ ?"

"पैट्रोल रिजर्व पर आ गया है।" मैंने पैट्रोल नाब को 'आर' पर कर दिया।

पानी कुछ ज्यादा तेज हो गया था। स्कूटर को स्टैण्ड पर खडा करके हम दोनो पेड की घनी छाया मे हो गए।

हम दोनो चुप थे।

मैंने देखा, उसने चश्मा उतारा। रुमाल से उसके शीशे पोछे, आखे पोछी और चश्मा लगा लिया।

चश्मे के पीछे से वह अपनी आखे मिचमिचा रहा था।

हम लोग काफी देर गुमसुम खडे रहे। स्कूटर की अगली-पिछली दोनो सीटो पर पड रही पानी की टप-टप बूदो को हम देख रहे थे। हम दोनो बोलना टाल रहे थे। वह तो चुप था ही और मै बोल-बोलकर थक चुका था।

पानी कुछ हल्का हुआ तो मैंने कहा, "आओ चले।"

हम स्कूटर के पास आ गए। मनजीत ने जेब से आधा गीला रुमाल निकाला और अपनी गीली सीट को साफ करके उसे जेब मे रख लिया।

मैं हस दिया, "मैं समझता हू कि अब और किसी उदाहरण की जरूरत नही है?"

वह हतप्रभ-सा हुआ जैसे चोरी करता पकड लिया गया हो, उसी समय जब उसपर चोर होने का इल्जाम लगाया जा रहा हो।

उसने रुमाल निकाला और झटपट मेरी सीट साफ कर दी।

आठ-दस दिन मेरे पास रहकर मनजीत वापस बम्बई जा रहा था। मैंने कहा, "याद रखना, तुम्हारे पास सिर्फ अप्रैल तक का समय है। तब तक तुम फैसला कर लो और दिल्ली आ जाओ। बाद मे बच्चो को स्कूलो मे एडमीशन मिलना मुश्किल होगा।"

हम लोग स्टेशन पर आ गए थे। बूदा-बादी तो रास्ते मे ही शुरू हो गई थी, पहुचते-पहुचते पानी काफी तेज हो गया। स्कूटर मैंने स्टेशन से बाहर शेड मे खडा कर दिया। 'जनता' मे उसकी सीट रिजर्व हो चुकी थी। जगह लेकर हम लोग प्लेटफार्म पर टहलने लगे।

पानी और तेज हो गया था। तेज बौछार से 'शेड' के नीचे का प्लेटफार्म भी आधे से ज्यादा भीग गया था। आसमान घुप काला था, और हम पटरियो पर पडती हुई मूसलाधार वर्षा देख रहे थे।

मैं मनजीत से वर्षा पर बात कर रहा था। दिल्ली और बम्बई की वर्षा की तुलना कर रहा था। बम्बई मे वर्षा के दिनो मे अपने साथ घटी हुई घटनाओ की

वडी दिलचस्पी से, हस-हसकर चर्चा कर रहा था। कुल एक दिन पहले ही मैं उस-पर बुरी तरह से नाराज हुआ था। ऐसी नाराजगी के बाद मनजीत के साथ कुछ वैसा ही व्यवहार करने को मेरा मन करता है जैसा बचपन मे मेरी मा मुझे खूब मारने और रुलाने के बाद मेरे साथ किया करती थी। ऐसे मौको पर मैं उसके साथ बहुत मुलायमियत के साथ पेश आता हू। वैसे मैं अकसर उसे 'तू' कहता हू। परन्तु ऐसे दिन सभल-सभलकर 'तुम' कहता हू और सोचता हू कि यदि 'तुम' कहना इसे अच्छा न लग रहा हो तो 'आप' कहू।

मुझे एकाएक अपने स्कूटर का ध्यान आया। अभी तीन बजने मे दस मिनट थे, गाडी छूटने मे आधा घटा था। मैंने उससे कहा, "अब मैं चलू न ?"

उसे आश्चर्य हुआ, "क्यो, कही जाना है ? मगर अभी बारिश भी तो कितनी तेज है।"

मुझे मन ही मन उसपर बडा गुस्सा आया। मुझे बहुत-से उदाहरण याद हैं जब मनजीत मुझे स्टेशन पर छोडने आया और गाडी मे मुझे जगह मिलने के पाच-सात मिनट बाद ही असहज-सा दिखाई देने लगा, फिर बोला, "अच्छा, अब मैं चलता हू हा, वहा पहुचकर पत्र फौरन लिखना।"

मैंने कहा, "स्कूटर बाहर पानी मे ही खडा है। पता नही क्या हालत है उसकी ? और इस बरसात मे उसे उडा ले जाना भी ज्यादा मुश्किल नही है।"

वह बोला, "अच्छा, तुम उसे एक बार देख आओ। देखकर वापस आ जाना ‥ जरूर। गाडी चलने मे तो अभी काफी देर है।"

मैं 'अच्छा' कहकर चल दिया, परन्तु मन मे सोचता रहा कि वापस नही आऊगा।

बाहर स्टेशन के पोर्टिको से देखा, सामने स्कूटर खडा है। पानी उसी तेजी से बरस रहा था। पोर्टिको मे काफी भीड थी।

मैं पाच-सात मिनट वही खडा रहा। भीड मे लोगो के गीले कधे मुझे बार-बार छू रहे थे। मनजीत की गाडी छूटने मे अभी बीस एक मिनट बाकी थे।

मैं घूमकर उसके प्लेटफार्म की ओर चल दिया।

उसके डिब्बे के पास पहुचकर देखा, वह लम्बी वाली नीचे की सीट पर पालथी मारे बैठा है। खिडकी से वह इतनी दूर था कि मैं बाहर से हाथ बढाकर उसे छू भी नही सकता था। मुझे देखकर वह खुश हुआ, "क्यो, क्या हाल है तुम्हारे

वाहन का ?"

मैंने मुस्कराकर, आखे झपकाकर गरदन हिला दी।

मैंने देखा वह वही बैठा कह रहा है, "मेरी चिट्ठी का जवाब देने मे तुम बडी देर कर देते हो। उत्तर तुरन्त दे दिया करो।"

मैंने हसकर कहा, "वाह, खुद तो हफ्तो चिट्ठी नही लिखते हो, ऊपर से यह तुर्रा।"

वह अपनी शरमीली-सी हसी हस दिया, "मेरी चिट्ठी न भी आया करे तो भी तुम दूसरे-चौथे जरूर लिख दिया करो।"

मैंने देखा आस-पास बैठे लोग हमारी बातो मे बडी रुचि ले रहे है। मुझे अजीब कुढन-सी महसूस हुई। मैंने कहा, "बाहर आओ न।"

"नही नही।" वह झटपट बोला, "पैर-वैर साफ करके ऊपर रखे है। बाहर आने से पैर फिर खराब हो जाएगे।" और वह अपने-आपमे थोडा और सिमट गया।

गाडी जाने मे अभी दस मिनट से ज्यादा थे। कभी वह उधर बाथ नह उ र गे बोलता, कभी मै इधर से। आवाज बीच मे बैठे हुए लोगो पर अपना भेद खोलती हुई एक-दूसरे के पास पहुचती थी। मै प्लेटफार्म पर घूमते हुए लोगो को देखने लगता, फिर उसकी ओर देखकर ऐसे ही उससे कुछ भी पूछ लेता।

मैं 'टी-स्टाल' पर खडे एक जोडे को देख रहा था कि उसने वहीं से मुझे जोर से आवाज दी। आसपास बैठे लोग हम दोनो को देखने लगे। वह मुस्कराते हुए बोला, "नीता, रमा, दर्शी या और किसीको कोई सदेश भिजवाना है ?"

बैठे हुए लोग होठ सिकोडकर उत्सुकतापूर्वक मुझे देखने लगे। मैने भी वैसी रहस्यमयी मुस्कराहट मे जवाब दिया, "उसमे तुम्हारी सिफारिश की जरूरत है।"

वह हस पडा।

गाडी जाने मे अभी कुछ मिनट बाकी थे, परन्तु अब इस तरह खडे रहना मुझे बहुत खल रहा था। मैने कहा, "अच्छा मनजीत, अब मै चलू।"

उसने मुझे रोका नहीं। वहीं से गरदन हिलाकर बोला, "अच्छा, चिट्ठी लिखना।"

मुझे बम्बई छोड़े साल-भर से ज्यादा हो गया है। मनजीत वहीं है। बहुत दिनों बाद उसे एक अच्छी नौकरी मिली है, परन्तु अभी तक वह उनमें 'कन्फर्म' नहीं हुआ, टैम्प्रेरी वैकेंसी पर काम कर रहा है। मनजीत बहुत आशावादी है। मैं कहता हूं, खन्ना मार्च-अप्रैल तक जरूर ज्वाइन कर लेगा। उसका स्वास्थ्य अब ठीक है। मनजीत का आशावाद कहता है—चाहे अब वह ठीक ही हो गया हो, पर दफ्तर वाले उसे रखेंगे नहीं। टी० बी० की थर्ड स्टेज तक वह पहुंच गया था। दफ्तर वाले कुछ ले-देकर उसे रिजाइन करने के लिए मना लेंगे।

मैं पूछता हूं, "मान लो, उसने रिजाइन कर भी दिया तो भी इस बात का क्या भरोसा है कि परमानेंट वेकेंसी पर वे तुम्हीं को रखेंगे। ऐसी अनिश्चित अवस्था से तो अच्छा है तुम दिल्ली आ जाओ। यहां तुम्हारे लिए पक्की नौकरी का इन्तजाम हो जाना ज्यादा मुश्किल नहीं है।"

मेरी इस बात पर वह कहीं से पढ़ा हुआ एक वाक्य बड़े दार्शनिक अन्दाज में कहता है, "इस युग की एक बात बिल्कुल निश्चित है कि कुछ भी निश्चित नहीं है।"

बम्बई पहुंचकर मनजीत का पत्र आया, "यहां आते ही महंगाई रूपी सुरसा का विकराल रूप देख रहा हूं। अच्छा गेहूं ढाई रुपये किलो, वह भी मिलता नहीं। सस्ता गेहूं आठ आने किलो तक मिल जाता है। पर उसका आटा पेट में सीमेंट की तरह जम जाता है। अच्छा चावल देखने को नहीं मिलता। कोई सब्जी डेढ़-दो रुपये से कम नहीं है। देशी घी की तो बात न पूछो। पन्द्रह रुपये किलो भी मिलना मुश्किल है। अच्छा वनस्पति घी भी ब्लैक में बिक रहा है। पुरानी लोकोक्ति दाल-रोटी खाने की बात कहती है, परन्तु आजकल सब्जी-रोटी खाना दाल-रोटी खाने से इसलिए सस्ता है क्योंकि कोई भी दाल दो रुपये किलो से कम नहीं है।

"और दफ्तर का हाल यह है कि सुन रहा हूं कि खन्ना छह महीने के लिए अपनी छुट्टी बढ़ा रहा है।"

इसके बाद महीना-डेढ़ महीना गुजर गया, उसका कोई पत्र नहीं आया।

मैं स्कूटर का एक मिलिटरी ट्रक से एक्सीडेंट कर बैठा हूं। शाम को मैं कश्मीरी गेट जाने के लिए घर से निकला था। अभी इंडस्ट्रियल एरिया का चौराहा

पार करके मैं जखीरे की ओर बढा ही था कि दाहिनी ओर की एक सडक से वह ट्रक बडी तेजी से निकला और मुझे बस इतना ही याद है कि पलक झपकते मैंने उसे अपने सामने पाया था।

मैं घटनास्थल पर ही बेहोश हो गया था। होश आने पर कितने ही लोगो को अपने चारो ओर खडा पाया। सिर मे खासा गहरा जख्म हुआ था। दाहिनी जाघ और घुटने पर भी चोट आई थी। फिर भी मेरे सभी हितचिंतक भगवान का लाख-लाख शुक्र कर रहे हैं कि उसने हाथ देकर मुझे बचा लिया। नही तो ऐसी दुर्घटना के बाद कौन बचता है। और यदि बच भी जाए तो हाथ-पैर तुडवाकर जिन्दगी-भर के लिए अपाहिज तो हो ही जाता है।

मनजीत को इस दुर्घटना की खबर न जाने कैसे लग गई। दुर्घटना के पाच-सात दिन के बाद उसका एक्सप्रेस पत्र आया, केवल दो पक्तियो का घसीटपत्र, "सुना है तुम दुर्घटनाग्रस्त हो गए हो। लौटती डाक से अपना पूरा हाल लिखो।"

मैं डॉक्टर के पास ड्रेसिंग कराने जा रहा था। लौटकर आया तो कुछ पीकर सो गया। आख खुली तो तीमारदारी के लिए आने वालो से अपने को घिरा पाया।

दूसरे दिन की डाक मे मनजीत का एक पोस्टकार्ड था, "तुम्हे एक एक्सप्रेस पत्र लिख चुका हू। सुना है तुम किसी दुर्घटना के शिकार हो गए हो। अपना पूरा हाल लिखो।"

मैं कॉलिज जाने की तैयारी कर रहा था। एक सप्ताह की छुट्टी पूरी हो चुकी थी। सोचा, थोडा घूम भी आऊ। और पहली तारीख है, वेतन भी ले आऊ।

एक दिन छोडकर मनजीत का फिर पत्र आया, "बडे अजीब आदमी हो जी। ल्ली से बम्बई पत्र एक दिन मे आ जाता है। मैं तुम्हे दो पत्र लिख चुका हू। के मारे मेरा बुरा हाल है। लौटती डाक से अपने हाथ से लिखकर [illegible] दो।"

एक सप्ताह मे मनजीत के तीन पत्र ? ऐसा तो कभी नही हुआ। वह तो अपने-आपमे सिमटा रहने वाला कछुआ है, कछुआ। पिछले बीस बरस मे मुझे ऐसा नही लगा कि वह भी अपने को फैला सकता है, अपना विस्तार कर सकता है।

मुझे लगा, यह मनजीत तो उस मनजीत से कुछ अलग है, जिसे मैं [illegible]

से जानता हू ।

मैंने उसे पत्र नही लिखा ।

और एक के वाद दूसरा, उसके चार पत्र और आ चुके है। मुझे वडा मजा आ रहा है—'सिमटने मे, सिकुडने मे और उसकी चिन्ता, उत्सुकता, खीझ और झुझलाहट को मैं घूट-घूट कर इस तरह पी रहा हू जैसे वह कोई वहुत स्वादिष्ट पेय है, जिसे मैंने इसके पहले चखा तक नही ।

और उसका आज का पत्र तो वस कमाल है हसते-हसते मेरा वुरा हाल है, "अवे मौनी वावा के वच्चे! यह शायद आठवा पत्र लिख रहा हू । सुना है कि तेरे साथ कुछ दुर्घटना हो गई थी। सो उसमे वचा या मर गया। अगर सचमुच मर ही गया है तो मुझे खवर तो दे दे जिससे मैं निश्चित होकर अपने काम मे लगू। पर मुझे मालूम है कि तू अभी इस धरती पर ही रैंक रहा है क्योकि तेरे मरने पर वम्वई मे एक शोकसभा अवश्य होती और उसकी खवर अखवार मे भी छपती ।

"अच्छा, अव ज्यादा तग मत कर और अपने सडे हुए हाथो से दो शव्द लिखकर भेज दे।"

खूव हस चुकने के वाद मैं चारो ओर से कवल ओढकर, उसके पत्र को हाथ मे लेकर मुस्कराते हुए उसका स्वाद ले रहा हू ।

पुत्र

जी, मैं गौरमिंट कॉलेज हिसार मे फिजिक्स का प्रोफेसर हू। ग्रापने प्रोफे-सर सतराम शर्मा का नाम सुना होगा हिस्ट्री की किताबो के लेखक जी हा ? जी हा ग्रापने भी उनकी किताबे पढी है ? एक जमाने मे तो उनकी लिखी किताबो की सभी यूनिवर्सिटियो मे तूती बोलती थी। ग्रब तो उनकी नकल करके ग्रौर भी सैकडो लोगो ने हिस्ट्री की किताबे लिख मारी है जी हा पर वह बात कहा ? जी, उनका लडका हू। पिताजी तो रिटायर हो गए है। यही राजौरी गार्डन मे उन्होने ग्रपनी कोठी बना ली है। पर, मैं हिसार जैसी जगह मे पडा हू। ग्राप पूछेगे, भला मैं भी दिल्ली क्यो नही ग्रा जाता ? क्या यहा मुझे किसी कॉलिज मे जगह नही मिल सकती ? ग्रब ग्रापको क्या बताऊ मैं ग्रपनी बडाई नही करता पर दिल्ली मे मेरे स्टेटस का कोई फिजिक्स का प्रोफेसर ग्रापको शायद ही मिले। मेरी जितनी क्वालीफिकेशन्स भी यहा कितने लोगो की है। चौदह साल का मेरा एक्सपीरिएस हो चुका है। मैंने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से एम० एस-सी० किया था। फर्स्ट क्लास ग्राया था मेरा। पर क्या होता है फर्स्ट क्लास लाने मे ? कई साल मैं लगातार दिल्ली के कालिजो मे एप्लाई करता रहा। वे ले लिए गए जो बिल्कुल नये थे, जो मेरे सामने कही नही ठहरते थे। मुझे नही लिया गया। क्योकि मैंने कोई सोर्स नही लगाया, कोई सिफारिश नही भिडाई। मैं तो यहा भी काटेस्ट करता हू सिर्फ ग्रपने मैरिट पर करता हू।

ग्राप तो जानते ही है कि मेरे पिताजी नेशनल रेपूटेशन के प्रोफेसर रह चुके है। दिल्ली के कॉलिजो के बहुत-से प्रिंसिपल उनके पढाए हुए है। उनकी तो इतनी इज्ज़त है कि वे मुझे कही भी फिक्स-ग्रप करा सकते है। पर शायद ग्राप मेरे पिताजी को पूरी तरह नही जानते। वे बडे कट्टर सिद्धान्तो के ग्रादमी है। वे मुझे कहते है, "तुम मुझसे एक लाख रुपया ले लो, पर मुझसे कही सिफारिश करने मत कहो। यह काम मैंने ग्रपनी जिन्दगी मे कभी नही किया।" ग्रौर फिर

इशारे पर मैं किसी नेशनल लेबोरेटरी मे बडी आसानी से लग सकता था। पर नही, जिन्दगी मे यह काम उन्होने कभी किया नही। न किसीकी सिफारिश की, न किसीकी सिफारिश मानी। अपने पिताजी की बात मैं आपको क्या बताऊ उनके जैसे कैरेक्टर और मॉरल एटीग्रिटी के आदमी आज दुनिया मे शायद दो-चार ही हो। यह बात मैं इसलिए नही कह रहा हू कि वे मेरे पिता है। यह बात तो वे सभी लोग मानते है जिनका उनसे वास्ता पडा है। आपको एक मजेदार वाकया सुनाऊ। जब वे रोहतक गौर्नमेंट कॉलेज के प्रिंसिपल थे, एक बार एक आदमी पजाब के किसी सीनियर मिनिस्टर का एक सिफारिशी खत लेकर उनके पास आया। पिताजी ने उस आदमी के सामने ही वह खत फाडकर रद्दी की टोकरी मे फेक दिया और मिनिस्टर के नाम एक नोट लिख दिया कि मेहरबानी करके मेरे काम मे दखल-अन्दाजी मत किया कीजिए।

आप क्या समझते है, वे किसी यूनिवर्सिटी के वाइस चासलर नही बन सकते थे? ये जो आपको आजकल बहुत-सी यूनिवर्सिटियो के वाइस चासलर दिखाई देते है, ये सब पिताजी से बहुत जूनियर रहे है। कुछ तो उनके स्टूडेंट भी रहे है। पर मेरे पिताजी ने कभी ऐसी बातो की परवाह नही की।

अब देखिए, मैं किसी नेशनल लेबोरेटरी मे काम करना चाहता हू। फिजिक्स से मुझे बहुत दिलचस्पी है। आई लव फिजिक्स। एक बार मैंने नेशनल लेबोरेटरी मे एप्लाई किया। मैंने डायरेक्टर से कहा, "मैं कुछ भी काम करने को तैयार हू। आप कहिए तो फर्श साफ कर सकता हू, झाडू लगा सकता हू। मैं तो देश की सेवा करना चाहता हू।" पर साहब, मै तो रिजेक्ट कर दिया गया और किसी लल्लू-पजू को रख लिया गया। आप देखिए, विदेशो मे वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे अठारह-अठारह घटे काम करते है। पर हमारे यहा क्या होता है? आपको चमचमाते हुए फर्श नजर आ जाएगे। बडी-बडी बिल्डिंगें नजर आ जाएगी। लेकिन उनके अन्दर काम रत्ती-भर नही। लोग कैण्टीन मे बैठे चाय-समोसे उडाया करते है। भला ये काम वैज्ञानिको के है! देश का करोडो रुपया बरबाद हो रहा है शीयर वेस्टेज बिग नेशनल वेस्टेज!

अच्छा, आपके कॉलेज मे फिजिक्स की एक वैकेंसी है। पर क्या होगा एप्लाई करने से? मै जानता हू, मैं लिया नही जाऊगा। मैं कोई नाजायज काम तो कर नही सकता। मुझसे यह हो नही सकता। मैं क्या करू? और यहा लोग

अपनी ही यूनिवर्सिटी के अपने विद्यार्थियो को लेना चाहते हैं, जो हमेशा उनके चमचे बने रहे हा-हा-हा 'भाई, मैं तो खरी बात कहने वालो मे हू। मेरे पिताजी भी हमेशा खरी बात कह दिया करते थे। वो तो प्राइम मिनिस्टर तक की परवाह नही करते थे। आखिर क्यो करते किसीकी परवाह? अपने लिए उन्होने कभी किसीसे कोई फेवर नही चाहा। उनकी सारी जिन्दगी शिक्षा और अध्ययन को समर्पित रही। वो रिटायर हो गए हैं, पर अभी भी कभी उनकी दिनचर्या आप देखिए मैं कहूगा, इस उमर मे भी वे हम-आपसे दुगुना काम कर लेते है। बस आप उन्हे लिखते हुए या पढते हुए पाएगे। लिखने-पढने से जब थोडा थक जाते है तो कुछ देर बागबानी कर लेते है। या थोडी देर के लिए सो जाते है। जब जागते है उठकर फिर लिखने लगते है। आप मानेगे नही, कडाके की सर्दी की रातो मे, जब हमारा मन बहुत जरूरी काम के लिए भी लिहाफ से निकलने को नही करता, वे मजे से उठकर अपनी मेज पर लिखने बैठ जाते है। आप पिताजी के कमरे मे जाकर देखिए किताबे ही किताबे नजर आएगी। लाखो रुपया उन्होने किताबो पर खर्च कर दिया है।

जी हा, आपकी बात तो ठीक है। दिल्ली के ग्रेड हिन्दुस्तान-भर मे सबसे अच्छे है। फोर्थ प्लान मे और भी रिवाइज होने जा रहे हैं। पर आप देखिए, उस समय कितना बुरा मालूम पडता है जब मेरे जैसा आदमी, अपनी [illegible] क्वालीफिकेशन्स रखता हुआ और इतने साल की सर्विस के बाद इटरव्यू मे उनके साथ एपियर हो जो अभी लौंडे है। आप सोचिए, यह बात कितनी फ्रस्ट्रेट करने वाली है। पिछली बार की बात आपको बताऊ। दो साल हुए मैं एक इटरव्यू के लिए दिल्ली आया। बीस लोग इटरव्यू के लिए बुलाए गए थे। हेड आफ द डिपार्टमेट ने एक-एक सवाल पूछकर बस दो-दो मिनट मे हमे चलता किया। फिर उसने अपने ही एक चमचे को रख लिया। जो रखा गया था, क्या बताऊ आपको, मेरे सामने अभी वह छोकरा था। इटरव्यू मे पहले अपने दोस्तो के साथ चाय-पकौडिया उडा रहा था। जानता था कि ले तो लिया ही जाएगा। पर मैं दावे से कह सकता हू कि फिजिक्स किसे कहते है इसकी उसे रत्ती-भर भी तमीज नही थी। मैं तो दिल्ली आना ही नही चाहता हू। वह शहर मुझे जरा भी पसन्द नही। कभी-कभी आने की बात तो मैं बस इसलिए सोच लेता हू, क्योकि यहा हमारा अपना मकान है। अपना मकान न हो तो कोई मुझे दो हजार रुपया महीना दे तब भी

दे तो मैं यहा न आऊ। ओफ कितनी भाग-दौड है इस शहर मे! एक जगह से दूसरी जगह जाना हो तो सारा दिन लग जाता है। घटो खडे रहो, वस नही मिलती और वसो की धक्कम-धक्का वस भगवान वचाए! मेरे जैसा डिगनीफाइड आदमी तो उसमे चढ ही नही सकता। और वसे जो धुआ छोडती है वह सेहत के लिए कितना बुरा है। वह भी जगह क्या रहने के काविल है जहा आदमी अच्छी तरह सास भी न ले सके। आप तो लिटरेचर के आदमी है पर मैं तो साइटिस्ट हू। धुए और गुवार से भरी शहर की गदी हवा का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पडता है, मैं अच्छी तरह जानता हू। हिसार चाहे छोटी जगह है, पर है वहुत अच्छी। न भीड-भाड न चिल्ल-पो आप वता रहे थे ना, उस दिन आप चादनी चौक से अपने घर तक टैक्सी मे आए। और छ रुपये लग गए हा-हा-हा वहुत लम्वी लाइन थी वस की, खूव धक्कम-धक्का था हा-हा-हा! वस यही तो मुसीवतें है वडे शहरो की। पता नही लोग वडे शहरो की तरफ क्यो भागते हैं? सच वात तो यह है कि आप एक दिन मे आने-जाने पर छः रुपये खर्च कर देते है। इतने तो हम साल-भर मे भी खर्च नही करते। वस साइकिल उठाई और कॉलेज पहुच गए। घर आए और पढने-लिखने मे डव गए। मुझे तो वस एक ही शौक है? अध्ययन का। ज्यादा से ज्यादा पढना चाहता हू। खेल-तमाशे का मुझे कोई शौक नही, वनाव-सिगार की कोई लालसा नही। पिताजी कहते है, इसान इन सव चीज़ो के लिए नही पैदा होता।

कभी-कभी पत्नी वहुत जिद करती है तो साल-छमाही उसके साथ सिनेमा चला जाता हू हा-हा-हा, क्या वताऊ मुझे तो वहा जाते ही नीद आ जाती है ··वडे मज़े से सो जाता हू। मैंने तो शादी होते ही अपनी पत्नी से कह दिया था, तुमने एक प्रोफेसर से शादी की है एक स्कॉलर से। मैं तुम्हे वैसी जिन्दगी नही दे सकूगा जैसी एक सरकारी अफसर दे सकता है। यहा तो त्याग का जीवन है··· लॉइफ आफ डेडीकेशन। देखिए, मेरी तनख्वाह है करीव छह सौ रुपये। पर मैं वहा मकान का किराया देता हू सवा सौ रुपये। मतलव यह हुआ कि अपनी तनख्वाह का एक वडा हिस्सा मैं मकान के किराये पर खर्च कर देता हू। मैं चाहू तो सस्ता मकान भी ले सकता हू। मेरे कॉलेज के दूसरे प्रोफेसर ऐसे ही मकानो मे रहते हैं। लेकिन मेरा इतने छोटे मकान मे गुज़ारा नही हो सकता। मेरे पास वेहिसाव तो कितावें है। मैं वीस-पच्चीस हज़ार रुपया इनपर खर्च कर चुका हू। छोटे मकान मे मैं

अपनी किताबे कहा रखूगा' 'आप ही बताइए '?

आप इस मकान का क्या किराया देते हैं? तीन सौ रुपये? कितनी जगह है? दो कमरे और किचन ''बस 'तीन सौ रुपये मे दो कमरे और किचन ''? जितना वडा मेरा मकान हिसार मे है उतना वडा तो यहा पाच सौ मे भी नही मिल सकता।

पर साहव, ग्रेड को लेकर कोई चाटे? यह ठीक है कि चौदह साल की सर्विस के वाद भी मुझे सिर्फ छह सौ मिल रहे है और दिल्ली मे एक नेताराम शुरू ही करता है लगभग सात सौ से ' यहा इनक्रीमेट भी वहा से वहुत ज्यादा है। पर हिसार जैसी शुद्ध हवा यहा कहा है? वह तो यहा सैकडो रुपया खर्च करने पर भी नही मिल सकती।

और दिल्ली मे रहने का मतलब है कि आपके पास आपका अपना वाहन हो। यहा अपना कन्वेयेन्स रखना कितने जोखिम का काम है। नेहिसाव तो यहा एक्सीडेट्स होते हैं। आपके पास तो अपना स्कूटर है ना? पर स्कूटर भी भला कोई सवारी है जिसपर सर्दी मे ठड लगती है, गर्मी मे लू लगती है और बरसात मे आदमी बुरी तरह भीग जाता है। आदमी के पास हो तो अपनी कार हो पर हमारे देश मे कितने लोग कार रख सकते है। मेरे पिताजी इसीलिए कार नही लेते। चाहे तो चार-चार कारे खरीद सकते है, पर नही। कहते है, कार रखकर आदमी जान-जोखिम क्यो पाले? और साहव, कार से अमीरी झलकती है। मेरे पिताजी इसके वहुत खिलाफ है। भई, हमारी तो वनावट ही कुछ दूसरी तरह की है। हम दोनो भाइयो पर पिताजी का वहुत असर है। यह वात कुछ कम गौरव की नही है कि हम लोग प्रोफेसर सतराम जी के पुत्र है।

पिताजी ने जब कोठी वनवाई तो उनके एक पुराने विद्यार्थी ने, जो उस समय दिल्ली टेलीफोन्स का जनरल मैनेजर था, कोठी पर टेलीफोन लगवा दिया। पिताजी ने दो महीने के अन्दर ही उसे उतरवा दिया। आप पूछेंगे क्यो? हा हा-हा पिताजी ने कहा, "यह मेरे पढने-लिखने मे वहुत वाधा डालता है [illegible] किर्रररररर, जव देखो किर्रररर।" लोगो को जब यह पता लग गया कि पिताजी के पास टेलीफोन है तो उन्होने उन्हे वहुत तग करना शुरू कर दिया। [illegible] रहा है, इस सभा की अध्यक्षता कीजिए, कोई [illegible] रहा है, उस [illegible] का उद्घाटन कर दीजिए पिताजी इससे वहुत परेशान हुए। मैं भी [illegible]

हिसार मे टेलीफोन लगवा सकता हू । पर, फिर मुझे भी ये सब मुसीबते उठानी पडेगी। दिखावा हमे बिल्कुल पसद नही हे इसीलिए हमे सफर भी करना पडता है।

एक बार की बात आपको बताता हू। आप देख ही रहे है, मै सादा लिबास पसन्द करता हू।—धोती, कुर्ता और चप्पल । चाहे क्लास मे जाना हो या किसी गवर्नर के बाप से मिलना हो, मैं अपनी यह वेशभूषा नही छोडता। एक बार एक इटरव्यू के बाद उस कॉलेज के एक प्रोफेसर बोले, "आपकी पर्सनेलिटी कुछ एम्प्रेसिव नही थी।" मैने कहा, "दिल्ली विश्वविद्यालय मे मेरी नियुक्ति हो चाहे न हो, मैं अपने रहने-सहने के ढग मे तो कोई परिवर्तन नही करूगा। पहनूगा हमेशा धोती-कुर्ता। दाढी हफ्ते मे सिर्फ दो बार बनवाऊगा।" फिजिक्स पढाता हू तो क्या हुआ आप ही सोचिए, जो लोग सूटो की छटा दिखाने, बूटो को चमकाने और रोज़ अपनी दाढी खुरचने मे ही अपना समय बर्बाद कर देते है, वे भला पढे-पढाएगे क्या, खाक ?

अब देखिए, हिसार मे इस बात को कोई नही पूछता। आपलोगो का बहुत-सा पैसा तो यहा सिर्फ शान-शौकत मे ही खर्च हो जाता होगा। हर सर्दी मे आप नये सूट बनवाते होगे। गर्मियो मे टेरीलीन की बहार चलती होगी। घर को भी खूब टिपटाप रखना पडता होगा। पर हमारे यहा यह सब दिखावा नही है। वहा तो सिर्फ दो-तीन जोडी कपडे हो तो मजे से काम चलता रहता है।

अच्छा अब आज्ञा दीजिए आपका बहुत समय ले लिया।

हा-हा, हिसार जाने वाली बस मिल जाएगी शाम तक घर पहुच जाऊगा।

आप क्यो तकलीफ करेगे मैं चला जाऊगा खैर यदि आप स्टेशन की तरफ जा ही रहे है तो मुझे बस के अड्डे तक पहुचा दीजिए। पर देखिए स्कूटर पर बैठने मे मुझे बहुत डर लगता है।

थैक्यू वेरी मच। माफ कीजिएगा आपको बहुत तकलीफ दी· हा मुझे बस मिल जाएगी। छूटने मे अभी पन्द्रह-बीस मिनट बाकी है ।

सुनिए वो ओ ओ आप कह रहे थे ना कि आपके कॉलेज मे फिजिक्स की एक वैकेंसी है आप कहेगे अपनी बडाई करता हू, पर यह बिलकुल सच है कि इस देश मे इस विषय को मेरे जितना जानने वाले लोग दो-चार ही होगे। मैं टॉप के लोगो मे से हू जैसे मेरे पिताजी हिस्ट्री मे टॉप के लोगो मे से है । जो

कॉलेज मुझे रखेगा, कम से कम फिजिक्स मे तो उसकी रेपूटेशन को कोई पा नही सकता। सुना है प्रिंसिपल आपकी बात बहुत मानते है आप जरा उन्हे मेरे बारे मे बताइए। एक्चुअली ही शुड इनवाइट मी टु ज्वाइन हिज इंस्टीट्यूशन • आप उनसे बात कीजिए • अच्छा जी धन्यवाद • मैं आपको हिसार से पत्र लिखूगा• उत्तर दीजिएगा नमस्कार ।

कील

इकत्तीस दिसम्बर है और फिर वही अजीव-सी परेशानी। जब यह दिन आता है तो मोना को लगता है कि उसके हाथ से कुछ फिसलकर नीचे गिर जाता है और देखते-देखते पारे की तरह बिखर जाता है। उस रात को लोग सोते नही है। रात के बारह बजने की प्रतीक्षा मे लोग लहरो की तरह सडको पर भागते फिरते हैं। सब 'कल' का स्वागत करने की ओर दौड रहे होते है। पर इन 'कल' का अहसास मोना को दिन-भर बेचैन किए रहता है और बार-बार उसके अन्दर ध्वनित होता रहता है। वह एक साल और बडी हो गई है।

इस बार पहली जनवरी को डैडी ने सुबह-सुबह 'हैपी बर्थ-डे' कहा तो छब्बीस की सख्या, जो कल से घटियो की हल्की-हल्की आवाज की तरह उसके चारो ओर खनक रही थी, धमककर उसके अन्दर उतर गई।

मम्मी का पत्र भी सुबह की डाक मे मिला। उन्होने भी उसके बर्थ-डे का जिक्र किया है। पर ऐसे जैसे वह उसे बस कनखियो से देखकर निकल जाना चाहती हो। पत्र के शेष भाग मे उन्होने वही सब कुछ लिखा है जो वह चाहती है कि मम्मी लिखे, अधिक विस्तार मे लिखे। पर विस्तार से लिखी हुई इस बात को पढकर मोना खीझ उठती है। एक कडुवाहट उसकी रग-रग से करेन्ट की तरह गुजरने लगती है। मम्मी लिखती है, "मोना, अब और ज्यादा रुकना ठीक नही। हर काम की एक उम्र होती है। फिर लडकी तो एक ऐसा फूल है कि अपनी डाल पर लगे-लगे मुरझा जाता है और अगर उसे तोडकर किसीके कोट पर लगा दिया जाए तो उसकी ताजगी खत्म होने मे ही नही आती। अब तुम्हे फैसला कर ही लेना चाहिए। अब तो मुझे तुम्हारे डैडी की बात बिल्कुल समझ मे नही आती। यह ठीक है कि तुम लाखो मे एक हो। वैसे मोना, हर मा-बाप की बेटी लाखो मे एक ही होती है। परन्तु अब ऐसा लडका जो तुम्हारे डैडी को भी पसन्द हो और तुम्हे भी पसन्द हो, कहा से ढूढा जाएगा और आखिर यह देखभाल कब तक चलती

रहेगी । मेरे ख्याल मे सुरेश सब तरह से तुम्हारे काबिल है। वह तुम्हे चाहता भी बहुत है, और तुम्हारी कितनी इज्जत करता है •

सुरेश उसकी बहुत इज्जत करता है। डैडी कहते हैं, वैसे तो सुरेश ठीक है। धीरे-धीरे उसका वकालत का धधा भी जम जाएगा। पर वह थोडा दब्बू स्वभाव का आदमी लगता है। मोना कोई मामूली लडकी तो है नही कि शादी की, घर बसा लिया और पति पर रोब गाठ-गाठकर हसते-खेलते जिन्दगी गुजार दी। मोना को तो ऐसा लडका चाहिए जो उसके अन्दर छिपी उन अनन्त शक्तियो को पहचान सके और उनके फलने-फूलने के सभी साधन जुटा सके। एक दब्बू स्वभाव का लडका यह काम नही कर सकता।

डैडी से वह लगातार सुनती आ रही है कि वह कोई मामूली लडकी नही है। यह बात उसके अन्दर इतनी गहराई तक बैठ गई है कि उसे हर लडका बहुत मामूली नजर आता है और कोई लडका अपने काबिल नजर नही आता।

जब कभी किसी लडके के बारे मे बात चलती है, सब कुछ [illegible], देखने-सुनने के बाद जब मम्मी की आखे मोना और उसके डैडी पर जमती है तो डैडी के मुख पर एक बहुत परिचित मुद्रा उभर आती है। वह लम्बी कुर्सी पर थोडा और अधलेटे हो जाते हैं। उनकी आख सुबह के पढे हुए अखबार मे से कुछ अनपढ खबरे ढूढने लगती है और वह बहुत रुक-रुककर कहते हैं, "मोना से पूछ लो, अगर यह लडका उसे अपने काबिल लगे तो मुझे कोई एतराज नही है।"

और मोना जान जाती है कि डैडी की मर्जी क्या है? उसे लगता है यह लडका जो अभी उसे देखकर गया है, जरूर उसके काबिल नही है। वह मना कर देती है। मम्मी खोई खोई-सी उन्हे देखती रहती है।

डैडी की सेहत ऐसी है कि न ज्यादा गर्मी बर्दाश्त होती है, न सर्दी। इसलिए सर्दियो मे वह बम्बई चले आते है और गर्मियो मे किसी पहाड पर। [illegible] मे उनके तीन-चार महीने ही गुजरते है। [illegible] मोना उनके साथ जा रही है। मोना की जिम्मेदारी मे डैडी [illegible] । वह सुबह उन्हे चाय पिलाकर, अखबार पढकर सुनाती है। [illegible] और कम्पनी न हो तो वह उनके साथ बैठकर [illegible] पत्र-पत्रिकाओ के पन्ने उलटते है। उनमे छपी हुई किसी [illegible] पक्तियां स्वय पढते है और यदि वह अच्छी लगती [illegible]

हैं। मोना उन्हे दिन मे तीन-चार बार कप मे रगडकर बनाई हुई एस्प्रेसो कॉफी पिलाती है। उनका विश्वास है कि ऐसी कॉफी मोना के अलावा और कोई नही बना सकता। मोना जानती है, मम्मी के साथ उनकी पटरी नही बैठती। रीता को अपने घर और दो बच्चो से बिल्कुल फुर्सत नही मिलती और चदर अकेला ही इतना बडा मेडिकल स्टोर सभालता है। इस स्थिति मे डैडी की देखभाल के लिए रह जाती हे सिर्फ मोना।

डैडी घूमने के लिए बाहर गए है और वह मम्मी के पत्र को मरोडती हुई गुम-सुम-सी बैठी है। पता नही उसे क्या चाहिए ? पता नही वह पुरुष कैसा है ? पता नही वह किसकी तलाश कर रही है ? और वह उठकर वार्ड रोब मे लगे आदमकद शीशे के सामने आ खडी होती है। वह अपने-आपको देखती है, अपना व्यक्तित्व। फिर उनकी कल्पना करती है सुरेश की उसकी उसकी। उसे लगता है सभी उसकी साडी का पल्लू पकडे बडी श्रद्धा से उसके मुख की ओर ताक रहे है, बिल्कुल बौने आदमियो की तरह।

नैनीताल मे डैडी के परिचितो की सख्या बढती जा रही है। उनमे एक कर्नल साहब हैं, एक बैरिस्टर साहब है, दो-तीन अवकाश-प्राप्त सरकारी अफसर है। सबकी उम्र एक जैसी है। सबकी आदतें एक जैसी है। सबके पास अपनी गुजारी हुई जिन्दगी मे से दूसरो को सुनाने के लिए बहुत कुछ है। सबको अपने लडको-लडकियो से कुछ खास शिकायते है। इसलिए डैडी की सुबहे और शामे यहा बहुत भरी-भरी-सी गुजर रही है। पर मोना तो और अकेली होती जा रही है। भटकते-भटकते थक जाती है। तीखी अकुलाहट उसकी रग-रग से फूटने लगती है और वह शीशे के सामने आकर खडी हो जाती है। अपने-आपको देखती रहती है—अपना पाच फुट छह इच का कद। अपनी बडी-बडी आखे, अपनी लम्बी सुडौल बाहे, अपना भरा हुआ शरीर और बहुत अन्दर तक बैठी हुई एक मोना एक बहुत जाग्रत् मोना।

वह पलग पर लेटी हुई कोई किताब पढने का उपक्रम कर रही है। उसने अपने-आपको बिल्कुल ढीला छोड दिया है। उसकी साडी से उसकी पिण्डलिया बाहर निकल गई है। उसकी अलके इधर-उधर बिखरी हुई है। डैडी बाहर के कमरे मे अपने दोस्तो के साथ शतरज मे डूबे हुए है। और ऐसी अस्त-व्यस्त पडी हुई मोना आज अपने को बडा हल्का-हल्का महसूस कर रही है। इतना अस्त-व्यस्त हो

जाना कितना अच्छा है। उसका मन कर रहा है—वह कुछ और शिथिल हो जाए, कुछ और अस्त-व्यस्त हो जाए। बस, पलग पर लेटे-लेटे कसकर अंगड़ाई ले। अपना अंग-अंग मरोड़कर रख दे। परन्तु बाहर डैडी हैं। वह जानती है, डैडी एकाएक अन्दर नही आएंगे। फिर भी वह बाहर ही तो बैठे हैं। डैडी के साथ वह अस्त-व्यस्त नहीं रह सकती। और उनके साथ रहते उसे कितने वर्ष बीत चुके हैं। डैडी के साथ रहना उसकी आदत बन चुकी है। उस आदत में एक कठोर, एक सख्ती सी इस तरह घुलमिल गई कि अस्त-व्यस्त होना उसे भूल-सा गया है।

उसने लेटे ही लेटे अपनी साडी को ठीक कर लिया है। उसने डैडी की आवाज सुनी है। वह कह रहे है, "कर्नल साहब, मोना मेरी लड़की नही, लड़का है। मेरा कितना ख्याल करती है। इसकी शादी हो जाएगी तो मैं अकेला रह जाऊंगा [illegible] मैं कहता हू मेरे घर मे मोना के रूप में किसी देवी ने जन्म लिया है [illegible] शी इज ए गॉडेस [illegible]।"

कर्नल साहब पूछ रहे है, "पर चोपड़ा साहब, अभी तक आपने उसकी शादी क्यो नही की? अब तो वह काफी सयानी हो गई है।"

"आप ठीक कहते है, कर्नल साहब!" डैडी कह रहे हैं, "इस उम्र तक अक्सर लड़कियों की शादी हो जाती है। पर मोना कोई मामूली लड़की नहीं है। आपने उसकी पर्सनाल्टी तो देखा ही है। उसे म्यूजिक का बेहद शौक है। लिटरेचर मे उसकी गहरी दिलचस्पी है। उसके लिए कोई मामूली लड़का नहीं चाहिए [illegible] सच कहू कर्नल साहब, मुझे उसकी शादी की कोई जल्दी नहीं। पर यह जरूर चाहता हू कि लड़का ऐसा हो जो उसके [illegible] ।"

मोना डैडी के मुख से ऐसी बाते बहुत बार सुन चुकी है। [illegible] [illegible] सालों से लगातार सुनती चली आ रही है [illegible] वह देवी है [illegible] डैडी सभी से कहते रहते हैं [illegible] मोना मामूली लड़की नहीं [illegible] उसके लिए मामूली लड़का [illegible] चाहिए [illegible]

आज वह कर्नल साहब से कह रहे थे, 'मुझे मोना की शादी की [illegible] नहीं है' [illegible] क्यों जल्दी नही है? मोना के मन मे बार-बार उठ रहा है। [illegible] वह गैरमामूली लड़का मिलेगा कहां [illegible] ? उसे [illegible] ? [illegible] एकाएक वह किसी अवतार की तरह प्रकट हो जाएगा? सखी [illegible] वह फूल है जो ज्यादा देर डाल पर लगे रहने से मुरझा जाता है।' [illegible]

भी मुरझा जाएगी ? छह महीने की दूरी पर खडा हुआ सत्ताइसवा साल उसे मुस्कराते हुए सकेत कर रहा है और उसके पीछे दूर खडा हुआ उसे अट्ठाइसवा साल भी मद्धिम-मद्धिम-सा नजर आ रहा है · और उसके पीछे 'उसके पीछे गहरा अधेरा है जहा कुछ भी नजर नही आता ।

वह फिर शीशे के सामने आ खडी हुई है। उसे लगता है, वह वहुत सुन्दर है वह अभी भी वहुत सुन्दर है। थोडा इससे कम भी सुन्दर होती तो कोई अन्तर न पडता। उसे लगता है, वह वहुत स्वस्थ है। कभी वीमार ही नही पडती। ऐसी भी क्या तन्दुरुस्ती कि आदमी कभी वीमार ही न पडे। डैडी वीमार रहते है, वह उनकी तीमारदारी करती है। पिछले सात-आठ साल से वह लगातार डैडी के साथ जुडी हुई है। वी० ए० के वाद उसका कितना मन था कि वह म्यूजिक मे एम० ए० करे। उसने एम० ए० ज्वाइन भी कर लिया था, पर वीच मे ही वह छोडना पडा। तव से उसे वस एक ही काम है, डैडी के साथ रहना। उनके साथ वम्वई, दिल्ली और नैनीताल के वीच झूलते रहना।

और डैडी लगातार उसकी कितनी प्रशसा करते-करते चले आ रहे है 'मोना मेरी लडकी नही, लडका है मोना के रूप मे मेरे घर मे किसी देवी ने जन्म लिया है ।'

मम्मी ने अपने पत्र मे फिर वही वात लिखी है 'कुछ फैसला करो सुरेश अभी भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।'

फैसला ? किसे करना है फैसला ? उसे ? क्या उसे फैसला करना है ? क्या आज तक वह खुद फैसला करती आई है ? कौन करता है फैसला ?

वाहर टैडी की हसी गूज रही है। उन्होने कर्नल साहव के वादशाह पर शह लगा दी है।

'मोना !" टैडी की आवाज है। वह उसे साथ की कुर्सी पर बैठने का इशारा करते है, "मोना · क्या तुम सुरेश से शादी करने को तैयार हो ?"

वह उनकी ओर देखती है। सामने की छोटी मेज पर गिलास के नीचे एक पत्र दवा हुआ है। डैडी की नजर सुवह के पढे हुए अखवार पर दौड रही हैं। पता नही क्यो दौड रही है ? क्या कोई ऐसी खवर है जो सुवह के दो-तीन घण्टों के पारायण के वाद भी वच गई है, या उन्हे अखवार पर दौडने की सिर्फ आदत

पड गई है ?

"तुम्हारी मम्मी का पत्र आया है," डैडी बोल रहे हैं, पर उनकी नज़रें अभी भी अखबारी कागज पर सरपट दौड रही है, "उसने लिखा है कि तुम सुरेश से शादी करने को तैयार हो। तुमने उन्हे लिखा था ...?"

"जी ।"

"बडी अजीब बात है ।" उनकी सरपट दौडती नजरें अखबार से उठकर मोना के चेहरे पर दौडने लगी है, "तुमने तो खुद ही एक दिन कहा था कि उसमे कोई खास बात नही है।"

"पर मुझमे ही क्या खास बात है डैडी ?"

"तुममे ?" डैडी बहुत गभीर हो जाते है, "तुममें तो वह बात है जो लाखो मे नही होती। हा, यह बात जरूर है कि आदमी को खुद नही मालूम होता कि वह क्या है ? खैर मैं चाहता हू कि तुम खूब सोच-समझकर फैसला करो। मैं नही चाहता कि किसी दबाव मे आकर तुम अपनी मर्जी के खिलाफ कोई फैसला कर लो ... कही तुम अपनी मा की इच्छा तो नही पूरी कर रही हो, मोना ?"

"नही डैडी। यह फैसला मैंने खुद किया है।"

"तब तो बडी खुशी की बात है," डैडी बहुत सहज-सामान्य हो आए है, "मैं तो बस इतना ही चाहता हू कि मेरी हीरे जैसी बेटी किसी ऐसी जगह जाए जहा उसकी पूरी कद्र हो। तुम इस रिश्ते से खुश हो तो मैं भी खुश हू, बहुत खुश हू।"

मोना शीशे के सामने खडी है। आदमकद वह शीशा [illegible] बहुत चुप-चुप देखती रही है ... बहुत गभीर होकर। [illegible] वह मुह बना-बनाकर आखे घुमा-घुमाकर, गर्दन [illegible] ऐसी बहुत-सी बाते देखे जो उसने पहले नही देखी थी।

एकाएक उसे अपने दाहिने गाल के ऊपर [illegible] बहुत नजदीक होकर उस तिल पर उगली रख-रखकर [illegible] होता है। उसके मुह पर यह तिल कब निकल आई ? [illegible]

बाहर से कर्नल साहब की तेज हसी सुनाई दे रही है, "[illegible] आज मात दे ही दी। अगले [illegible] आप जब फिर आएगे [illegible]

जौहर दिखाऊगा आपको 'हा' हा ''"

डैडी बहुत धीरे-धीरे बोल रहे हैं, "कर्नल साहब, अगले साल यहा आना नसीब होगा या नही कौन जाने ? मोना बहुत सयानी हो गई है। उसकी शादी अब जल्दी ही करनी है। फिर यह अपने घर चली जाएगी। मेरे साथ कौन आएगा ?"

मोना ने कील खुरचकर फेक दी है और उस स्थान को मुह बिचकाकर गर्दन टेढी करके देख रही है।

वहा खून उभर आया है।

ब्लाटिंग पेपर

वहा से आने पर प्रीती का पत्र मिला, "चलते समय [illegible] सकी। उस दिन बसो की हडताल थी। सोचा स्टेशन पर ही [illegible] और बच्चो को मिल लूगी। सो मैं बाम्बे सेण्ट्रल पर पहुच गई। पर [illegible] आपका पता पूछने राम महल मे आई तो मालूम हुआ, आप [illegible] वी० टी० स्टेशन से गए थे। उस दिन अजीब हालत थी मेरी। [illegible] सात बजे तक बाम्बे सेण्ट्रल पर बैठी आपकी राह देखती रही [illegible]। आपकी कुछ किताबे मेरे पास है। अम्मा जल्दी ही [illegible] हाथ भिजवा दूगी। नही तो दिल्ली आने पर (यदि [illegible]) [illegible]। समस्याए सभी हल हो गई है। उस लडके से अनु की शादी हो गई है। [illegible] पूना के इजीनियरिंग कालेज मे एडमीशन मिल गया है। [illegible] गया है।

"मैं भी पढाई कर रही हू।

"वैसे तो आप जानते है कि मेरी अपनी कोई समस्या नही है। [illegible] स्याही को सुखाने की समस्या साधारण कागजो [illegible] पेपर हू।"

प्रीती अपने को ब्लाटिंग पेपर कहती है। यह बात उसने मुझ [illegible] भी कही थी। मैंने जब बम्बई छोडने की बात बताई तो [illegible] थी। परन्तु प्रीती पूरी तरह निर्लिप्त थी

"आपका जाना बहनो को बुरा लग रहा है न? पर मुझे [illegible] लगता। आपको सब कहते होगे—मत जाइए, पर [illegible] और जाकर सबको भूल जाइए। मुझे क्या? मैं तो ब्लाटिंग पेपर [illegible]।"

प्रीती को मैं तीन-चार साल से जानता हू। उस दिन [illegible] सोसाइटी ने कालिज हॉल मे शाम को [illegible] किया था। [illegible]

थी। वह उसी वर्ष उस कॉलेज मे आई थी। उसके सवाद सुनकर मैं सोचता रहा ·· ऐसी हिन्दी वोलने वाली लडकी कहा की है। सलवार-कमीज और कद से वह पजावी लगती थी, पर वोलने के लहजे मे उर्दू झलक रही थी। फिर वह मुझे अपनी एक क्लास मे दिखाई दी। उसके मुह से कुछ सुनने के लिए मैंने उससे कुछ सवाल पूछ लिया। वाद मे मुझे मालूम हुआ, वह लखनऊ से आई है।

एक दिन मैंने पूछा, "तुम्हारा सरनेम मेहता है। तुम गुजराती हो क्या ?"

वह वोली, "एक तरह से मेरी मा उत्तर प्रदेश की है और पिताजी गुजराती। पर हमे गुजराती वोलना विलकुल नही आता।"

मैंने पूछा, "तुम्हारे पिताजी क्या काम करते है ?"

वह वोली, "मा एक स्कूल मे हेडमिस्ट्रेस है।"

वह जानती थी कि मेरे सवाल का यह जवाव नही है। कुछ रुककर वोली, "पिताजी लखनऊ मे विज़नेस करते हैं, पर हमलोग उनके साथ नही रहते।"

इटर की परीक्षा हो गई तो मैंने पूछा, "वी० ए० मे कौन-से विषय लोगी ?"

वह वोली, "मैं आगे शायद ही पढू इन छुट्टियो मे शायद मेरी शादी हो जाए।"

कॉलेज शुरू होने पर प्रीती ने वी० ए० ज्वाइन किया।

वह मेरे पास कितावे लेने आती थी और काफी देर वैठती थी। अपनी घर-गिरस्ती की सव वाते वह मुझसे करने लगी थी। एक दिन वोली, "आपसे उनको मिलाना चाहती हू।"

"किसे ?"

"एक है ।" उसके चेहरे पर वह लज्जा आ गई थी जिसके आगे और सवालो की ज़रूरत नही रहती।

मैंने कहा, "अच्छा, उन्हे किसी दिन लेकर आओ।"

"आप उन्हे जानते हैं।"

"मैं जानता हू ।" मुझे आश्चर्य हुआ, "मेरा ऐसा कौन परिचित है जिसके तुम इतना नज़दीक पहुच गई हो ?"

"याद कीजिए। कल आपका किसी नये व्यक्ति से परिचय हुआ था ?"

मुझे याद आया। इस वर्ष कॉलेज के केमिस्ट्री विभाग मे एक नया प्रोफेसर आया था—अरोरा। कल स्टाफ रूम मे मेरा उससे परिचय हुआ था। फिर काफी

देर बैठे हमलोग गप-शप करते रहे थे।

मैंने पूछा, "प्रोफेसर अरोरा?"

प्रीती नीचे देखने लगी, "उनका नाम मनोहर है।"

"पर उसे इस कॉलेज में आए तो अभी एक महीना भी नहीं हुआ। तुम्हारा उससे परिचय कैसे हुआ?"

"हमलोग एक-दूसरे को तीन-चार साल से जानते हैं। इस कॉलेज में आने से पहले मैं दो साल साइन्स लेकर एम० सी० कॉलेज में पढ़ी थी। तब मनोहर वहाँ बी० एस-सी० में पढ़ते थे।"

मैं कुछ सोचने लगा।

"आपको कैसे लगे?" प्रीती पूछ बैठी।

"आदमी मुझे अच्छा लगा।" मैंने कहा, "बातचीत, देखने-सुनने, सबमें बड़ा प्लीजिंग है। पर अब तुम इस जान-पहचान को ज्यादा लम्बा न करो। उससे शादी कर लो।"

वह बोली, "पहले इन छुट्टियों में करने का विचार था। फिर मैंने सोचा, मैं थोड़ा सेटल हो लूँ।"

प्रीती आती और मनोहर की बात करती। घूम-फिरकर उसकी हर बात में मनोहर आ जाता और फिर वह पूरी तरह डूब जाती। उसकी आँखों और होंठों से बस 'मनोहर' झरता रहता।

मनोहर मेरी आँखों में बहुत उठ गया था। जिस व्यक्ति को एक लड़की इतना चाहे वह साधारण नहीं हो सकता।

प्रीती ने मनोहर को जितनी चिट्ठियाँ लिखी थीं, उनकी नकल उसने एक डायरी में रखी थी। वह डायरी उसने मुझे पढ़ने के लिए दे दी।

प्रेम-पत्रों को इतना निरपेक्ष होकर कैसे पढ़ा जा सकता है? और उन प्रेम-पत्रों को जिनमें लिखने वाली का रोम-रोम डूबा हुआ था। एक झुरझुरी-सी मेरे सारे शरीर में दौड़ गई थी।

मैंने झुंझलाकर पूछा, "यह डायरी तुमने मुझे क्यों पढ़ाई?"

"ऐसे ही।" वह ऐसे निरीह भाव से बोली, जैसे उसने डायरी नहीं, किसी प्रश्न का उत्तर मुझे दिखाया हो।

मैंने खीझकर कहा, "तुम बडी मूर्ख हो—महामूर्ख।"

सात-आठ महीने बीतगए। प्रो० अरोरा कॉलेज मे बहुत पापुलर हो गया था। स्टाफ रूम मे, होस्टल मे, लडको, लडकियो मे उसकी खूब चर्चा सुनाई देती थी।

मैं प्रीती से कहता, "इन गर्मियो मे तुम मनोहर से जरूर शादी कर लो। वह कहता था ना, कि सेटल हो जाऊ। अब तो अच्छी-खासी नौकरी है उसके पास। अब ज्यादा रुकने की क्या जरूरत है ?"

मनोहर के बारे मे बहुत बाते करने वाली प्रीती, मेरी इस बात पर मौन साधे कुछ सोचती रहती।

एक दिन बोली, "आपने उनके बारे मे कुछ सुना ?"

मैं उसके बारे मे बहुत कुछ सुन चुका था। मैंने पूछा, "क्यो, तुमने कोई खास बात सुनी है ?"

"आपने लाज और कमला वाली बाते नही सुनी ?"

मैंने कहा, "तुमने इस बारे मे क्या सुना है, यह बताओ।"

"इन दोनो लडकियो से उनके सम्बन्ध बहुत बढ गए है।"

"सम्बन्ध बढ जाने से कुछ गडबड बात पैदा हो गई हो, यह जरूरी तो नही।"

"वह आजकल मुझसे बहुत कतराते है।"

"हो सकता है, उसे कुछ उलझने हो, कुछ परेशानिया हो।" मैंने कहा, "ऐसा करो। एक दिन मिलकर उससे खूब खुली-खुली बाते करो।"

प्रीती ने उसे एक पत्र लिखा। क्लास मे जाने से पहले वह मुझे दे गई। बोली, "पढ लीजिए और किसी चपरासी के हाथ उनके पास भिजवा दीजिए।"

प्रीती ने उस पत्र मे मनोहर से शनिवार की शाम को मिलने के लिए कहा था। कहा नही, आग्रह किया था। आग्रह नही, मिन्नते की थी। ऐसी मिन्नतें यदि कालीकट मे बैठकर कोई स्त्री हिमालय से करे तो वह पिघलकर उसके चरणो मे आ गिरे।

सोमवार को प्रीती एक पत्र मेरी मेज पर रखकर चली गई। मनोहर ने लिखा था, "मैं आजकल बहुत व्यस्त हू, इसलिए इस शनिवार को नही मिल पाऊगा।"

फिर एक दिन कॉलेज मे एक धमाका हुआ—सुबह-सुबह सुना कि मिस्टर प्रो० अरोरा की नौकरी खत्म। प्रिंसिपल के पास किन्ही लड़को का एक गुमनाम पत्र पहुचा था—प्रो० अरोरा ने कॉलेज की सारी लड़कियो को फसा रखा है। फिर तारीखवार विवरण था—किस तारीख को किसने उसे मनोहर [illegible] लेकर किस रेस्ट्रा की केबिन मे दो घण्टे बैठा रहा। किस तारीख को [illegible] को लेकर पवई के जगल मे सारा दिन घूम रहा। किस तारीख को उसने दो लड़कियो को अपने दाये-बाये बैठाकर एरोस के बाक्स मे कौन-सी अंग्रेजी फिल्म देखी।

प्रीती कई दिन मेरे घर नही आई। उसे मैने कालेज मे भी नही देखा। फिर आई तो उसने मनोहर की कोई बात नही की। अपनी पढ़ाई की बात करती रही।

मैने पूछा, "मनोहर से मिलना हुआ?"

"हा। परसो घर आए थे। मा से कुछ देर बैठे बाते करते रहे। जाते समय कहने लगे, 'बस स्टाप तक छोड़ आओ।' मैने कहा, 'मुझे अभी बहुत काम है।'"

एक दिन वह मेरे कमरे मे बैठी थी कि मेरा एक दोस्त आ गया। प्रीती कुछ देर बाद चली गई तो वह बोला, "समर की प्रेमिका तुम्हारे पास बहुत आने लगी है।"

"समर की प्रेमिका ? कौन ?"

"और कौन ? यही प्रीती।"

"तुमने उससे शादी क्यों नहीं कर ली ?" मैंने कहा, "मैं समझता हूं, उसे शादी की बहुत जरूरत है। और तुम्हारे जैसी लडकी तो उसके लिए वरदान बन सकती थी।"

वह बोली, "मैंने उनसे एक बार कहा था, 'समर साहब, आप मुझसे शादी कर लीजिए।' वे बोले, 'शादी आर्टिस्ट के लिए बडी मुसीबत है। हम लोग बस मुहब्बत करे। शादी के चक्कर मे न पडे।' "

"फिर ?"

"फिर क्या ? समर साहब आर्टिस्ट है। पर मैं तो एक साधारण लडकी हू। चाहती हू शादी करू, घर बसाऊ, छोटे-छोटे बच्चे हो, उन्हे नहलाऊ-धुलाऊ, डाटू-फटकारू, स्कूल भेजू। और जब वे स्कूल से आए तो उन्हे अपनी गोद मे बैठाकर जोर से दबा लू।"

प्रीती की इच्छा पूर्ण नही हुई। समर ने आर्टिस्ट होने के नाते पूरी नही की। मनोहर पर से उसका विश्वास टूट गया। वह कुछ दिन कटी हुई पतग की तरह दिशाहीन रही।

कभी-कभी मैं उसकी डायरी पढता। एक पन्ने पर उसने लिखा था—'इच्छा होती है कि किसी अधे आदमी से शादी कर लू। दूर नदी के किनारे एक गाव मे अपनी झोपडी डाल लू। फिर उस अधे की इतनी सेवा करू कि उसे लाठी की भी जरूरत न रहे। बात-बात मे वह मुझे पुकारे प्रीती प्रीती। और मैं बार-बार अपने हाथ का काम छोडकर उसके पास दौडी चली आऊ। उसके लिए मैं सबसे जरूरी चीज बन जाऊ।'

मैंने कहा, "प्रीती, तुम अपने भाई को यही बुला लो। वह तुम्हारे साथ रहे तो तुम्हारी भटकन शायद कुछ कम हो जाए।"

"उसे लखनऊ मे स्कॉलरशिप मिली हुई है। इस साल उसका हायर सेकेण्डरी हो जाएगा। तब तक शायद यहा आ जाए—पर हा," प्रीती ने अपनी नजरें मुझपर गडा दी, "मुझमे भटकन है ? कैसी भटकन ? और वह उसके आने से कैसे दूर होगी ?"

"दूर नही होगी ?" मैंने कहा, "कुछ कम हो सकती है।"

फिर उसके जीवन मे यह अध्याय शुरू हुआ। वह फिर बावली बन गई, डूब

फिर एक दिन कॉलिज मे एक धमाका हुआ—सुबह-सुबह सुनने को मिला प्रो० अरोरा की नौकरी खत्म। प्रिंसिपल के पास किन्ही लडको का एक गुमनाम पत्र पहुचा था—प्रो० अरोरा ने कॉलेज की मान लडकियो को फसा रखा है। फिर तारीखवार विवरण था —किस तारीख को कितने बजे मनोहर लाज को लेकर किस रेस्ट्रा की केबिन मे दो घण्टे बैठा रहा। किस तारीख को वह कमला को लेकर पवई के जगल मे सारा दिन गुम रहा। किस तारीख को उसने दो लड-कियो को अपने दायें-बाये बैठाकर एरोस के बॉक्स मे कौन-सी अग्रेजी पिक्चर देखी।

प्रीती कई दिन मेरे घर नही आई। उसे मैंने कॉलेज मे भी नही देखा। फिर आई तो उसने मनोहर की कोई बात नही की। अपनी पढाई की बाते करती रही।

मैंने पूछा, "मनोहर से मिलना हुआ ?"

"हा। परसो घर आए थे। मा से कुछ देर बैठे बाते करते रहे। जाते समय कहने लगे,'बस स्टाप तक छोड आओ।' मैंने कहा, 'मुझे अभी बहुत काम है।' "

एक दिन वह मेरे कमरे मे बैठी थी कि मेरा एक दोस्त आ गया। प्रीती कुछ देर बाद चली गई तो वह बोला, "समर की प्रेमिका तुम्हारे पास बहुत आने लगी है।"

"समर की प्रेमिका ? कौन ?"

"और कौन ? यही प्रीती।"

समर को मैं जानता हू। वह ड्रामे लिखता है और फिर उन्हे स्टेज कराने के लिए एडी-चोटी एक किया करता है। पिछले कई साल से मैं उसे इसी तरह फटे हाल देख रहा हू। मुझे याद आया, पहली बार जब मैंने प्रीती को स्टेज पर देखा था, वह ड्रामा भी समर का ही लिखा हुआ था।

समर के बारे मे मुझे प्रीती से कुछ पूछना नही पडा। उसने स्वय बताया, "समर साहब ने मुझे बहुत सहारा दिया था। उन दिनो मैं बहुत भटकी हुई थी, बहुत परेशान थी। चाहती थी, किसी पुरुष की बाहो का सहारा मिल जाए। मनोहर से मेरी जान-पहचान बाद मे हुई थी।"

"तुम समर से बहुत प्रभावित लगती हो ?" मैंने पूछा।

"हा, मैं उनसे बहुत प्रभावित रही हू।" वह बोली, "हम लोग घटो एक-दूसरे का हाथ पकडे जुहू बीच पर घूमते रहते थे।"

"तुमने उससे शादी क्यो नही कर ली ?" मैने कहा, "मैं समझता हू, उसे शादी की बहुत जरूरत है। और तुम्हारे जैसी लडकी तो उसके लिए वरदान बन सकती थी।"

वह बोली, "मैंने उनसे एक बार कहा था, 'समर साहब, आप मुझसे शादी कर लीजिए।' वे बोले, 'शादी आर्टिस्ट के लिए बडी मुसीबत है। हम लोग बस मुहब्बत करे। शादी के चक्कर मे न पडे।' "

"फिर ?"

"फिर क्या · ?समर साहब आर्टिस्ट है। पर मैं तो एक साधारण लडकी हू। चाहती हू शादी करू, घर बसाऊ, छोटे-छोटे बच्चे हो, उन्हे नहलाऊ-धुलाऊ, डाटू-फटकारू, स्कूल भेजू। और जब वे स्कूल से आए तो उन्हे अपनी गोद मे बैठाकर जोर से दबा लू।"

प्रीती की इच्छा पूर्ण नही हुई। समर ने आर्टिस्ट होने के नाते पूरी नही की। मनोहर पर से उसका विश्वास टूट गया। वह कुछ दिन कटी हुई पतग की तरह दिशाहीन रही।

कभी-कभी मैं उसकी डायरी पढता। एक पन्ने पर उसने लिखा था—'इच्छा होती है कि किसी अधे आदमी से शादी कर लू। दूर नदी के किनारे एक गाव मे अपनी झोपडी डाल लू। फिर उस अधे की इतनी सेवा करू कि उसे लाठी की भी जरूरत न रहे। बात-बात मे वह मुझे पुकारे प्रीती प्रीती। और मैं बार-बार अपने हाथ का काम छोडकर उसके पास दौडी चली आऊ! उसके लिए मैं सबसे जरूरी चीज़ बन जाऊ।'

मैंने कहा, "प्रीती, तुम अपने भाई को यही बुला लो। वह तुम्हारे साथ रहे तो तुम्हारी भटकन शायद कुछ कम हो जाए।"

"उसे लखनऊ मे स्कॉलरशिप मिली हुई है। इस साल उसका हायर सेकेण्डरी हो जाएगा। तब तक शायद यहा आ जाए—पर हा," प्रीती ने अपनी नज़रे मुझपर गडा दी, "मुझमे भटकन है ? कैसी भटकन ? और वह उसके आने से कैसे दूर होगी ?"

"दूर नही होगी ?" मैंने कहा, "कुछ कम हो सकती है।"

फिर उसके जीवन मे यह अध्याय शुरू हुआ। वह फिर बावली बन गई, डूब

गई और उसकी आखो मे फिर वही रग आ गया। वह निखरी-सी लगने लगी। पिछले दिनो वह कुछ झुककर चलने लगी थी। अब उसकी चाल मे सिधाई आ गई। पिछले दिनो वह हर क्लास मे रेगुलर आने लगी थी। अब वह पहले पीरियड मे कभी नजर नही आती थी।

एक दिन मिली तो मैंने पूछा, "प्रीती, आजकल कहा खोई हुई हो ?"

वह मुग्धा-सी कुछ क्षण बैठकर मेरी किताबो की ओर देखती रही। ऐसा लग रहा था, उसने बहुत दिन बाद कोई बडी स्वादिष्ट चीज खाई है और स्वाद का मन ही मन आनन्द ले रही है।

"वह बहुत अच्छे है।"

"कौन है ?"

"इजीनियर है। नाम है जगदीश।"

"तुम्हे कहा मिले ?"

"बस मिल गए।" प्रीती ने बडे उल्लास मे कहा जैसे और कुछ बताने से उस अलभ्य वस्तु की महत्ता कम हो जाएगी।

पिछला साल-भर प्रीती बहुत खुश रही है। अपने 'ईश' के बारे मे वह जब तब मुझे बताती रही है और मैं पूछता रहा हू। इस बीच वह मुझसे मिली भी बहुत कम। कभी-कभी कॉलेज मे नजर आई तो प्लेटफार्म की ओर दौडते हुए मुसाफिर-सी लगी। अगस्त मे उसने मुझसे कहा था, 'हम लोग अक्तूबर मे शादी कर रहे हैं।' अक्तूबर की छुट्टियो के बाद जब मैंने उसे देखा तो उसकी बाहो मे मुझे एकाध पुरानी चूडी ही दिखाई दी। उसकी एक सहेली ने मुझे बताया, प्रीती कह रही थी, उसकी शादी दिसम्बर मे हो रही है।

जनवरी-फरवरी के महीनो मे वह क्लास मे एक दिन भी नही आई। मैंने उसे सदेश भिजवाया—इस तरह एबसेन्ट रहोगी तो अटैन्डेन्स शार्ट हो जाएगी।

तब वह बडी व्यस्त-सी आई। बोली, "मैं अप्रैल मे इम्तहान नही दे रही हू।"

मैंने पूछा, "क्यो ?"

बोली, "मई मे शादी करनी है। ईश के सभी रिश्तेदार तो दिल्ली मे हैं। वे लोग इस शादी से ज्यादा खुश भी नही है। इसलिए दोनो ओर से शादी की तैयारी

तो मुझे ही करनी होगी।"

मैंने दवी जुवान से कहा, "परीक्षा दे डालती तो अच्छा रहता। एक वार गिरस्ती के चक्कर मे फस गई तो फिर पढना वडा मुश्किल हो जाएगा।"

परन्तु प्रीती वडी लापरवाही से वोली, "हो सकेगा तो अक्तूवर मे एपियर हो जाऊगी। नही तो मै वी० ए० न भी हुई तो क्या हुआ। गिरस्ती चलाने के लिए वी० ए० की डिग्री जरूरी तो नही।"

मई-जून निकल गए। वहुत-से लोग प्रीती की जिंदगी से डका वजाते हुए निकल गए थे। ये महीने भी निकल गए। मुझे मालूम है, प्रीती ने दोनो वाहे फैलाकर, हा-हा खाकर, इन्हे रोका होगा। वडे-वडे वास्ते दिए होगे। पर जव उससे आदमी नही रुके तो भला ये महीने क्यो रुकते!

मैं वम्वई से जाने वाला हूं, यह सुनकर वह आई। वही दिशा-भ्रमित खोई हुई प्रीती। रुक-रुककर और कुछ ढूढ-ढूढकर चलने वाली प्रीती। समस्याओ की कितनी परतो के नीचे वह दवी हुई थी। उसकी छोटी वहन अजू किसी रिश्तेदार के लडके से गर्भवती हो गई थी। सुरेन्द्र को पूना इजीनियरिंग कॉलिज मे एडमीशन मिल गया था, पर पैसो का कोई प्रवन्ध नही हो पाया। अम्मा वहुत परेशान थी।

मैंने पूछा, "तुम कैसी हो?"

"मुझे कोई परेशानी नही।"

"ईश कहा है?"

"उनकी नौकरी दिल्ली मे लग गई है। कभी-कभी उनका पत्र आता है।"

मैंने कहा, "मै दिल्ली जा रहा हू। उनका पता मुझे दो तो वहा उनसे मिलू—वैसे अव उनका इरादा क्या है?"

"मैं नही जानती, क्या है उनका इरादा।" वह वोली, "लिखा है, मैं यहा अपने घर वालो को मना रहा हू। जैसे ही वे मान गए, हम लोग शादी कर लेगे।"

फिर वह मुझे नही मिली।

पत्र आया, वह उस दिन वाम्वे सेन्ट्रल पर हम लोगो की राह देखती रही।

मैंने उत्तर दिया, "अजू की उस लडके से शादी हो गई और सुरेन्द्र के लिए पैसो का प्रवन्ध हो गया यह जानकर खुशी हुई। पर असली खुशी तव हो जव तुम्हारी भी समस्या हल हो जाए। ईश का पता लिखो तो कभी उनसे मिलने की

कोशिश करू।"

इस पत्र का उत्तर भी आ गया है

"अपने ईश का पता नही दूगी। कारण बौद्धिक नही है, बस मन की बात है। उनसे मिलने का प्रयत्न भी मत कीजिएगा। वे पसन्द नही करेगे। डर है गलत अर्थ न ले ले। मुझे उनपर विश्वास रखना चाहिए रखती भी हू।

"पर चू कि एक बहुत बडी आशा है मुझे उनमे, बहुत महत्त्वपूर्ण अपेक्षा है इसलिए अपने को देखकर कभी-कभी सहम भी जाती हू। कभी-कभी ख्याल आ जाता है, पता नही मैं अपनी मजिल तक पहुच पाऊगी या नही। यदि मेरी यह इच्छा पूर्ण हुई तो मैं इस धरती पर सबसे अधिक सुखी प्राणी रहूगी। मुझे ऐसी आशा है। परन्तु ··

"परन्तु मैंने अपने को मुडने के लिए भी तैयार कर लिया है। आपने एक बार मेरी डायरी मे पढा था 'मेरी इच्छा है कि मैं किसी अधे से शादी कर लू। जिन्दगी मे कोई अच्छा काम कर जाऊगी। मुझे प्यार चाहिए। वह दे भी सकेगा, सब पूरा का पूरा, एक चित्त 'यह बात मैं अभी तक भूली नही हू। भूल भी नही पाती। रह-रहकर वह बात ताजी हो जाती है। घर के नीचे इस तरफ बहुत अधे दिखते रहते हैं। टुक-टुक करते, अकेले-अकेले डगमगाते, धीरे-धीरे जाते देखती हू यहा से वहा तक।

"ईश से शादी हुई तो भी इनके लिए कुछ करुगी। नही होती तो बस किसी एक मे ही समा जाऊगी। ढू ढिएगा तो भी नही मिल पाऊगी सच।

"या शायद नर्स बन जाऊ। और प्रार्थना करुगी कि मुझे नेफा या लद्दाख के किसी अस्पताल मे पोस्ट कर दो। अम्मा पर और भार बने रहना ठीक नही समझती। कभी-कभार प्यासी होऊगी · अभी भी होती हू, तो उनसे कहूगी साल मे एक बार जब छुट्टी मिलेगी, एक महीना दे दो मुझे, बस थोडे-से दिन सतृप्त से दे दो, दे दो मुझे।

"पर कैसे देंगे वे? जिससे वे शादी करेगे, वर्ष के ३६५ दिन उसीके होंगे।

"पढ रही हू। सच बहुत पढती हू। ऐसी मन स्थिति मे ही इटर की तैयारी की थी। बी० ए० की भी ऐसे मे ही तैयारी कर रही हू। पर आखिरी बार। यू बार-बार नही हो पाएगा। बहुत जब्त करती रही हू। पता नही कब बाघ टूट जाए।"

ठंडक

जैसे ही उस विशाल भवन का कुछ भाग दिखाई दिया, जीवन ने कहा, "देखो, वह है पूरा एयरकंडीशंड है।" फिर वह स्वय ही सकुचित-सा हुआ, सत्या एयर-कंडीशड का मतलब क्या समझेगी। वह समझाने लगा, "देखो, अभी कितनी गर्मी है। वहा पहुचोगी तो ऐसा लगेगा, जैसे किसी ठडे पहाड पर आ गई हो।" परन्तु वह फिर सकुचित हुआ, सत्या ठडा पहाड भी क्या समझेगी। क्या वह कभी वहा गई है? और वह खुद भी कहा गया है। उसने भी तो केवल सुना ही है कि पहाड ठडे होते है। अमीर लोग गर्मियो मे पहाडो पर चले जाते है।

उसने फिर समझाया, "देखो, उसमे ऐसी मशीन लगी है, जिससे सारा मकान ठडा हो जाता है।" फिर उसने एक नज़र सत्या के कपडो की ओर डाली। पतली-सी सत्या के पतले-से शरीर पर पतली-सी साडी थी, पतला-सा ब्लाउज़ था। वह बोला, "तुमको हॉल मे ठड लगने लगेगी, देखना।"

उसे लगा, यदि हॉल मे सत्या को सचमुच ठड लगने लगे तो वह बडा खुश हो। इससे एयरकडीशन के सम्बन्ध मे बताई हुई उसकी बात पुष्ट हो जाएगी।

सत्या उसके साथ बढी चली जा रही थी। उसे लग रहा था, वह चल नही रही है, कोई हिलोर है जो उसे अपने-आप बढाए लिए जा रही है। दो महीने हुए, अपने छोटे-से नगर से वह इस महानगरी मे आई थी। ससुर के साथ घूघट मे कब वह गाडी से उतरी, कब टैक्सी मे बैठी और कब अपनी खोली मे पहुच गई, उसे अच्छी तरह याद नही। अपने कानो मे पडे कोलाहल से वह जान गई थी कि वह शहर मे आ गई है। पर शहर ऐसा होता है। हा, शहर ऐसा ही तो होता है। तभी तो इसे शहर कहते है। तभी तो उसके कसबे का हर आदमी यहा भाग आना चाहता है।

वे सिनेमा हॉल के निकट पहुच गए। एयरकडीशनिंग की भीनी-भीनी खुशबू उन तक पहुचने लगी। जीवन के चेहरे पर गर्व की खुशी दौड गई। बोला, "देखो,

कैसी ठडी-ठडी खुशबू आ रही है।"

सिनेमा हॉल के वाहर वडी भीड थी। अभी पहला शो समाप्त नही हुआ था। रग-विरगी साडियो, पैंटो और टाइयो की चहल-पहल सत्या को मेले जैसी लगी। वह मेला ही याद कर सकती है। मेला उसने कई वार देखा है। वहा भी कुछ ऐसी ही चहल-पहल होती है। पर कितना अन्तर है दोनो मेलो मे। एक मे वह हल्की-फुल्की डोगी-सी उतराती चली जाती है, दूसरे मे भारी पत्थर की तरह बैठती जा रही है।

जीवन ने नज़र इधर-उधर दौडाई। पता नही, शो समाप्त होने मे अभी कितनी देर है, पर वाहर की यह रगीन चहल-पहल भी तो किसी शो से कम नही। लोग गुटो मे वटे हुए है, हस रहे है, वाते कर रहे है, कुछ खा-पी रहे है। इस वातावरण मे वह भी अपने-आपको किसी चीज से वचित नही पाता। सत्या सहित उसका भी अपना एक गुट है। लोगो को आपस मे वातचीत करते देख वह भी सत्या से कुछ वातचीत करने लगता है। लोगो को हसता देख वह भी हस पडता है। वह और सत्या एक ही पैकेट से निकालकर वेफर खा रहे हैं। चारो ओर फैली हुई फिज़ा मे वह अपने-आपको हल्का महसूस कर रहा है।

सिनेमा हॉल के वाहर रखे हुए हाउस-फुल के वोर्ड की ओर इशारा करते हुए जीवन ने सत्या से कहा, "भीड काफी है। देखो, अव एक भी टिकट नही वचा। कितने लोग विचारे निराश लौटे जा रहे है।" फिर उसने अपनी पैंट की जेव मे पडे पर्स को अनुभव किया, उसमे पडे दो टिकटो को अनुभव किया और एक गहरे सतोष की लहर उसके सारे शरीर मे दौड गई।

"सुनो," सत्या वोली, "वह सामने एक लडका खडा है देख रहे हो न ?"

जीवन ने उधर देखा। "कौन लडका...?"

"अरे, वो, जो गदी-सी वुशशर्ट पहने है। लम्वा-सा।"

जीवन फिर भी कुछ नही समझा, क्योंकि उस ओर न गदी वुशशर्टो की कमी थी, न लम्वो की, परन्तु यदि वह उसे देख भी ले, तो हुआ क्या? वोला, "आखिर वात क्या है?"

"वो अर्जुन है।"

"अर्जुन! कौन अर्जुन ?"

"अर्जुन को नही जानते ?" सत्या खीझती हुई वोली, "अपनी गली के मोड

पर वो सिंधी नही रहते 'मनसुखानी उनका लडका।"

जीवन खीझ उठा। उसकी गली मे बहुत-से सिंधी रहते है और उनके बहुत-से लडके हैं · अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव। पर क्या वह सबकी खोज-खबर रखता है! बोला, "होगा उनका लडका, पर हमे इससे क्या ?"

सत्या ने उसे आश्चर्य से देखा जसे वह दिन को रात कह रहा हो। "तुम्हे मालूम नही, तीन दिन से अपने घर से लापता है। इसकी मा बिचारी रो-रोकर अधी हुई जा रही है।"

जीवन ने फिर उस ओर देखा। गदी बुशशर्ट वाला चौदह-पद्रह साल का लम्बा लडका अब उसकी नज़र मे आ गया था।

"सुनो," सत्या बोली, "ज़रा बुलाओ तो उसे।"

जीवन को यह करना कुछ अजीब-सा लगा, फिर भी उसने सी-सी · करके उसे बुलाया। वह पास आ गया।

जीवन ने सत्या की ओर देखा और सत्या ने जीवन की ओर, फिर दोनो ने उस लडके की ओर देखा। सत्या ने आखो से ही इशारा किया, "पूछो।"

जीवन को कुढन हुई, "क्या पूछू भला · ?"

सत्या ने जीवन की आकृति निरपेक्ष देखी, तो उस लडके की ओर उन्मुख हुई: "तुम्हारा क्या नाम है ? तुम्हारा नाम अर्जुन है न ·?"

दोनो प्रश्न एक साथ सुनकर जमे उस लडके की सिट्टी मारी गई। वह कुछ क्षण टुकुर-टुकुर दोनो को देखता रहा, फिर धीरे से बोला, "नही, मेरा नाम तो किशन है।"

उत्तर सुनकर सत्या को लगा, जैसे भरे बाजार मे किसीने उसका पल्लू खीच लिया है और जीवन को लगा, जैसे सचमुच सत्या का पल्लू ही खिच गया है। दोनो हक्के-बक्के-से खडे कभी एक-दूसरे को और कभी उस लडके को देखते रहे। वह फिर उसकी ओर उन्मुख हुई, "तुम्हारा नाम अर्जुन नही है···? तुम कुर्ला मे नही रहते हो ?"

इस बार उस लडके के मुह मे 'नही' नही निकला। वह चुपचाप खडा रहा। सत्या को जैसे बल मिला। "तुम तीन दिन से अपने घर से भागे हुए नही हो ?"

लडका चुप रहा। पर जीवन के लिए यह सब असह्य हो गया। खीझकर बोला, "इसमे तुम्हे क्या लेना-देना है, सत्या! खामख्वाह बेकार की झझट ले

बैठी हो। यह अर्जुन है या किशन, हमे इससे क्या मतलब है ?"

"तुम्हे मालूम है, जब से यह लापता है, इसके घर की क्या हालत है ?" सत्या के चेहरे पर एक रोष था, एक तमतमाहट, एक क्षुब्धता।

जीवन घबरा-सा गया। उसे कुछ सूझा नही कि वह क्या कहे। इतने मे वह लडका मुडा और चल पडा। पर सत्या ने झट मे उसका हाथ पकड लिया और बोली, "तुम्हे शर्म नही आती ! बिना खबर दिए तीन दिन मे घर मे गायब हो ! तुम्हारी मा रो-रोकर अधी हुई जा रही है। तुम्हारा बाप तुम्हे ढूढता हुआ मारा-मारा फिर रहा है और और तुम सिनेमा देखने आए हो ! बेशरम !"

जीवन परेशान-सा सत्या को देख रहा था। यह उसे हो क्या गया है ? और सत्या की तमतमाहट ऊर्ध्वमुखी होकर अब विगलित हो रही थी। उसका गला रुध गया था और नेत्र भर आए थे। उसके होठ काप रहे थे। उस लडके की बाह पकडे हुए उसके हाथ मे अजीब-सी थरथराहट हो रही थी।

और लडका सत्या के सम्मुख भेड बना खडा था न उसके मुह मे कुछ बोल निकल रहा था, न किसी प्रकार का प्रतिरोध करने की वह चेष्टा कर रहा था।

जीवन ने देखा, चारो ओर खडे लोगो का ध्यान भी उधर आकर्षित हो गया है। तमाशबीन उसकी चारो ओर इकट्ठे होने लगे थे। वह धीरे मे बोला, "अच्छा, इसे छोडो तो।"

सत्या ने हाथ ढीला कर दिया। लडका मुडकर बिना कुछ बोले चला गया।

जीवन ने देखा, लोग सामने के दरवाजे से अन्दर जा रहे है। बोला, "चलो, पहला शो छूट गया है।"

सत्या ने एक बार उधर देखा, जिस तरफ वह लडका गया था, फिर वह दी।

अन्दर घुसते ही एयरकडीशनिंग की ठडक ने जीवन को अभिभूत कर लिया। सने मुस्कराकर सत्या की ओर देखा, परन्तु उसके चेहरे पर छाई तप्तता वैसी बनी थी। जीवन को लगा, जैसे उसके समग्र आनन्द को किसी चीज ने डत कर दिया है। कितनी साध थी उसे, सत्या को यह राजमहल जैसा सिनेमा हॉल दिखाने की। पर बीच मे यह काटा कहा से चुभ गया ! उसने फिर कोशिश की। "सत्या, बिल्कुल राजमहल जैसा लगता है न ? देखो, जमीन पर बिछे गलीचे कैसे मुलायम है ! पैर धसते चले जाते है।"

सत्या ने नीचे की ओर देखा, फिर जीवन की ओर। उसकी आखो मे उसकी वात का समर्थन तो था, पर वह उल्लास नही था, जो जीवन देखना चाहता था।

जीवन का उत्साह मद पड गया। वह पता नही कितनी चीजे दिखाना चाहता था चारो ओर दीवारो पर लगे आदमकद शीशे, छत से लटकते फानूस। पर वह दिखाए किसे ? सत्या तो वहा थी ही नही।

वे हॉल के अन्दर अपनी सीटो पर जाकर वैठ गए। सामने लगा कीमती मखमल का परदा धीरे-धीरे दोनो ओर खिसक गया। पीछे सफेद परदा दिखाई दिया। हॉल की वत्तिया वुझ गई। सफेद परदे पर विज्ञापन दौडने लगे। फिर न्यूज रील शुरू हुई। जीवन को सत्या की धीमी आवाज़ सुनाई दी, "सुनो, यह अर्जुन अपने घर से भाग क्यो गया ?"

जीवन को लगा, जैसे किसीने उसे कचोट लिया। तुनककर वोला, "वह मुझे वताकर तो भागा नही। मुझे क्या मालूम !"

"तुम तो वेकार नाराज़ हो रहे हो। मैं पूछती हू, आखिर ये लडके अपने घर से भाग क्यो जाते है ?"

जीवन और तुनका "अच्छा, पिक्चर देख लेने दो। घर चलकर मैं इसी विषय पर रिसर्च शुरू करूगा।"

सत्या चुप हो गई।

पिक्चर शुरू हो गई। जीवन इस पिक्चर का पूरा आनन्द लेना चाहता था। वह सत्या को उस पिक्चर मे काम करने वाले हर पात्र का नाम और उनके गुण वताना चाहता था। वह दु ख के स्थलो पर सवेदना प्रकट करना चाहता था। वह हसी के स्थानो पर जी भरकर हसना चाहता था। परन्तु यह क्या हो गया है ! जीवन के आनन्द की शीतल जलधारा जैसे किसी तप्त रेगिस्तान मे खो गई।

जाने कितनी देर दोनो गुमसुम पिक्चर देखते रहे। उसे सत्या की धीमी आवाज फिर सुनाई दी, "सुनो, अर्जुन की मा ने तीन दिन से अन्न का दाना मुह मे नही डाला।"

जीवन ने उसे अधेरे मे ही घूरकर सत्या की ओर देखा। उसने अन्न का दाना मुह मे नही डाला, तो वह क्या करे। क्या उसने उसके लडके को घर से भगा दिया है ? और सत्या भी वस विचित्र है। इतनी देर से उसीका रोना लिए वैठी है।

वह कुछ नही वोला।

आधा घण्टा गुजर गया। सत्या की बुदबुदाहट उसे फिर सुनाई दी, "सुनो, हम लोगो ने गलती की। उसे छोडना नही चाहिए था। उसके बाप ने तीन दिन से अपनी दुकान नही खोली। उसके छोटे भाई-बहन स्कूल नही गए। मा तो हमेशा रोती रहती है। हम उसे पकडकर घर ले जाते। पिक्चर का क्या है पिक्चर फिर कभी देख लेते।"

जीवन को लगा, सत्या ने उसके सिर के बाल नोच लिए हैं। वह क्रोध से उबल पडा। दात पीसता और आवाज़ दबाता हुआ बोला, "तुम बकबक किए ही जाओगी या चुप भी बैठोगी? उस लडके के घर वालो के साथ इतनी हमदर्दी है, तो मेरे साथ इतनी दुश्मनी क्यो कर रही हो। सारी पिक्चर का मजा किरकिरा करके रख दिया। पगली कही की। अब ज्यादा बकबक की, तो मैं हॉल छोडकर चला जाऊगा।"

सत्या सुन्न हो गई। पिक्चर चलती रही, परन्तु वह स्थिर थी। इटरवल हुआ। पिक्चर फिर शुरु हुई, पर वह स्थिर ही रही · न हिली, न डुली, न कोई बात की।

दूसरे दिन सुबह जीवन उठा, तो सत्या चाय का प्याला सामने रखती हुई बोली, "सुनो, देखो, सुबह-सुबह नाराज मत होना। अब इतना तो करो कि अर्जुन के पिता को बता आओ कि वह हमे कल सिनेमा मे मिला था। बिचारो की कुछ चिन्ता तो दूर हो।"

परन्तु जीवन के मुह मे कल का कसैलापन पूरी तरह बाकी था, वह तल्खी से बोला, "मुझे क्या गरज पडी है। मैने क्या दुनिया का ठेका ले रखा है? तुम्हे बडी है तो जाओ, रोकता कौन है।"

सत्या चुप होकर बिस्तरे सभालने लगी।

इतने मे दरवाजे पर खटखट हुई। सत्या ने दरवाजा खोला। जीवन ने अन्दर बैठे ही सुना, कोई स्त्री कह रही थी, "बहन, तुम्हारी बडी मेहरबानी। अर्जुन को ही घर आ गया था। तुम उसे सनीमा मे मिली थी न। तुमने उसे खूब डाटा था न ··। बस, वह सीधा घर आ गया। बहन, तुम्हारी बहोत मेहरबानी। तुमने मेरे बेटे को मिलाया, मेरा दिल ठण्डा कर दिया।"

सत्या अन्दर आई तो जीवन ने देखा, उसके चेहरे पर वही ठण्डक है, जो वह एयरकण्डीशण्ड हॉल मे देखना चाहता था।

पारदर्शक

वह घर से निकलने को तैयार हुआ तो उसने सभी चीजे टटोली—पैंट के बैंक पॉकेट मे पडा हुआ पर्स, एक जेब मे रुमाल, बुशर्ट की जेब मे लगा पेन और फिर स्कूटर की चाबी ? उसे ऐसा दिन याद नही आता जब घर से निकलते समय तीन-चार मिनट इसमे न लगते हो, आखे अलमारी के दो-तीन खानो पर घुडदौड करती है और जब चाबियो के गुच्छे के साथ लगी पत्थर की मछली को ढूढ लेती है तो ऐसी खुश होती हे जैसे कोई मुश्किल सवाल हल हो गया हो।

और यह सवाल है कि हल होने से पहले मुश्किल हुए बगैर मानता ही नही।

उसने स्कूटर की सीट के साथ लगे हुक मे अपना ब्रीफकेस लटका दिया और भापी की ओर देखा। वह पास ही खडी थी। उसने स्कूटर को स्टैंड से उतारकर गेट के बाहर निकाला। स्टार्ट करते समय भापी के पीछे खडे होने का अहसास उसे बराबर बना रहा। फिर जब क्लच को फर्स्ट गियर पर मरोड दिया तो स्कूटर 'भरररर' करता हुआ आगे खिसकने लगा। उसने भापी की ओर देखा। उसकी गहरी आखो मे से मुस्कराहट उछलने की कोशिश कर रही थी।

कुछ दूर तक उसके और भापी के होठो से बधा हुआ तार खिचता रहा और फिर धीरे-धीरे वह टूट गया। भापी भिगोए हुए गदे कपडे उठाकर बाथरूम मे चली गई। फिर नहा-धोकर बाल छितरा दिए। फिर स्वेटर बुनते-बुनते पडोसिन से गप्पे मारने लगी। फिर कुछ खा लिया। फिर लेटकर किसी पत्रिका मे से कोई कहानी पढने लगी। फिर सो गई। उठी और धीमे कदमो से चलती हुई शाम आ गई ।

उसने पहले अपने दफ्तर जाकर मस्टर बुक पर हस्ताक्षर किए। दफ्तर तक का रास्ता पाच मील से कम नही। घर से आधे मील के रास्ते तक भापी का मुस्कराहट छलकाता हुआ चेहरा वापस मुड गया। सामने आ गए अपने एजेट, क्लायट, बीमा कम्पनी का दफ्तर, साथी फील्ड आफिसर और डायरी मे नोट किए हुए

बहुत-से नाम।

वापस मुडने का कोई समय नही। शाम को पाच बजे भी, रात को ग्यारह बजे भी। इसलिए भापी की ओर से इतजार का कोई प्रश्न ही नही। पर हजार गज दूर पर जो मोड हे वही मे वह अपने स्कूटर का होर्न बजा देता हे फिर पाच सौ गज की दूरी से 'किररर-किररर' दो बार, फिर अपनी लेन मे घुसते ही और उसे अपने घर का गेट खुलता हुआ नजर आता है और भापी की छाया।

उस दिन वह घर की ओर जल्दी ही मुड पडा था। दरियागज मे उसे शैल और तृप्ता मिल गई थी। शैल भापी की सहेली है इसलिए उसे 'जीजा जी' कहती है। तृप्ता शैल की सहेली हे। उसने कभी उसे 'जीजा जी' तो नही कहा पर शैल की चुहल के बाद उसके चेहरे पर भी एक मुस्कराहट आती हे। वैसे तृप्ता के चेहरे पर आई मुस्कराहट अन्धेरी गुफा मे टार्च से फेकी हुई रोशनी के समान लगती है।

शैल और तृप्ता मिल जाए तो किसी रेस्ट्रा मे कॉफी पीने का मौका वह नही छोडता। उसके दफ्तर मे एक भी लडकी नही हे। उसके क्लायट्स मे लडकियो के होने का सवाल ही नही। कभी-कभी कुछ एक 'पत्नियो' से वास्ता जरूर पडता है। पत्नियो से उसे चिढ-सी होने लगी हे। खास तौर से मध्यम वर्ग की वे पत्निया जो शादी के तीन-चार साल मे ही न मैली साडी की ही परवाह करती है, न अपनी कोहनियो पर चढी हुई मैल की।

उनके साथ कॉफी पीने, गपशप करने, उन्हे अपनी आखो से बहुत-सा नाप लेने के बाद उसे लगा, अब घर लौट चलना चाहिए। ऐसे दिन भापी के सान्निध्य उसे अतिरिक्त ज़रूरत महसूस होती हे और जो रात आम तौर से ग्यारह बजे के शुरू होती है उसे वह आठ बजे ही शुरू कर लेना चाहता हे।

वह घर की ओर वापस मुडा। क्लच दबाता, एक्सेलरेटर को घटाना-बढाना, ऱ का पजा फुटब्रेक पर और दाहिने हाथ की उगलिया गुलजार अल्गन पर अगली ब्रेक का इस्तेमाल करने के लिए तैयार। रास्ते-भर सोच के रन-भी उतने ही गतिशील—एक लाख का बिजनेस और ब्लैकमार्केट की दौलत 'शैल का अपने पति से जुडिशियल सेपरेशन कुछ दिनो के बाद तलाक फिर···? फिर कुछ नही। शैल अकेली और तीस साल से ज्यादा की तृप्ता। दोनो अकेली। उसे लगा, कुछ भीना-भीना-सा उसे छू रहा है।

सामने से आ रही डबलडेकर की कपाती हुई घडघडाहट से वह चौका।

निमिष-भर के लिए उसकी नजर मडगार्डो के नीचे घूमते हुए दतीले टायरो पर पडी और वह समलता हुआ वाई ओर को हो गया।

वह हजार गज दूर के मोड की ओर मुडने ही वाला था कि उसे सामने की बडी सडक की ओर दौडते हुए लोग दिखे·· एक्सीडेंट ? होते ही रहते है। परन्तु घर की ओर मुडने के वजाय उसका स्कूटर उसी ओर वढ गया। उसने स्कूटर खडा किया और भीड के कधो से झाककर देखा ·एक दृश्य।

दस गज के व्यास का घेरा वनाए औरते, मर्द और वच्चे।

खूव गाढे खून मे डूवा हुआ सिर का पिछला हिस्सा।

आधे खुले मुह से सास के एक टुकडे के आने-जाने का स्वर खच···खच··· खच ·

पास ही एक उलटा हुआ स्कूटर।

उसके कुछ आगे खडी एक जीप।

सडक पर टायरो की रगड के गहरे निशान।

गिरे हुए आदमी के मुह मे पानी डालती एक अधेड महिला की अनवरत धुन, "हरिओम हरिओम·· हरिओम हरिओम ·।"

भीड मे से निकलकर कुछ का जाना।

भीड मे कुछ का आ जुटना।

सवके मुह पर एक ही भाव, "अव कुछ नही हो सकता।"

पुलिस की प्रतीक्षा

गिरे पडे आदमी के घर वालो की प्रतीक्षा।

वह घर आ गया। आज उसने होर्न नही वजाया। अन्दर वहुत-सी उथल-पुथल हो गई थी।

रात को भापी उसके पास सरक आई। ऐसा वहुत कम होता है, जव पहल भापी की तरफ से हो। साल मे ऐसी दो-तीन तिथिया हैं। इकत्तीस दिसम्वर की रात। भापी को शराव से गधाता मुह अच्छा नही लगता। वह इस रात शराव ज़रूर पीता है और नशे मे धुत यदि वह सोने लगे तो वह उसे जगा देती है— जगाए रखती है। रात को वारह वजते ही जव घटे-घडियालो की आवाज सुनाई

देती है। तो वह 'नया साल मुवारक' कहती हुई उसके अलसाए अगों पर विफर जाती है। दूसरा दिन अठारह मितम्बर का है, जव उसकी शादी हुई थी। निश्चित तिथियो के अलावा साल मे दो-चार मौके और आते है। आज भी एक ऐसा ही दिन है।

मापी उसके होठो पर अपने होठ बड़े जोर से रगड रही थी। कुछ क्षणो के अतराल से वह वरावर यहा किए जा रही थी। पता नही कौन-सा भय था कि वह उसे उसके होठो के सान्निध्य से पी जाना चाहती थी या रगडकर वहा देना चाहती थी।

उस दिन शाम मापी ने वताया, "शैल की सहेली है न तृप्ता "

"हा हा ।" मापी समझती है। वह तृप्ता को बहुत कम जानता होगा।

"उसकी पिछले हफ्ते शादी हो गई है।"

क्या अजीव वात है? उसने सोचा। वोला, "यह तो वहुत अच्छा हुआ "। पर यह एकाएक हो कैसे गया? तुम्हे कैसे पता चला?" उसकी शैल और तृप्ता से वहुत दिन से मुलाकात नही हुई थी।

"शैल का आज पत्र आया है।"

तृप्ता की एक सरकारी अफसर से शादी हो गई। शैल से पूरी वात मालूम हुई। मिस्टर तनेजा पचास वर्ष की आयु तक अविवाहित रहे। फिर एकाएक उन्हे लगा शादी कर लेनी चहिए। तृप्ता का वडा भाई भी उसी मिनिस्ट्री मे है। वस वात वन गई।

वह और मापी एक दिन तृप्ता के नये घर भी हो आए। मिस्टर तनेजा ने दो कमरो का सेट छोडकर साढे तीन सौ रुपये मे तीन कमरो का सेट ले लिया था। शैल और तृप्ता ने घूम-घूमकर घर की जरूरत की चीजे खरीदी—मनमाफिक का डाइनिग टेवल, पलग सेट और ड्रेसिंग टेवल। ड्राइग-रूम के लिए गलीचा खरीदने के लिए तो दोनो ने दिल्ली की गली-गली छान मारी। शैल तृप्ता के घर के लिए एकाध चीज रोज ही खरीद लाती है और वडे फिल्मी अन्दाज मे कहती है, "मेरे सारे सपने तृप्ता के घर मे पूरे होने चाहिए।"

तनेजा साहव वडी मुश्किल से पैंतीस-चालीस के वीच के लगते थे। क्या सेहत है उनकी। लगता है सारी ज़िन्दगी कसरती आदमी रहे हैं। छाती खूब चौडी

और उभरी हुई। वाहे, जाथे खूब स्वस्थ, बाल एक भी सफेद नही (शायद डाई लगाते हो), बडे खुशमिजाज और बडे भोले। भोलेपन का हाल तो यह कि एक दिन शैल ने तृप्ता को कुहनी मारते हुए कहा, "यह तृप्ता की बच्ची भी बडी बेरहम है विचारे तनेजा साहब को कुछ मालूम नही ··और यह है कि उनकी बात मानती नही "

शैल बेतहाशा हसे चली जा रही थी। तृप्ता उसे गालिया देती हुई मुक्के मार रही थी। उस दिन उसे लगा, तृप्ता के चेहरे पर कितनी रौनक आ गई है।

आज वह दफ्तर जाने मे बहुत अलसा रहा है। दफ्तर बन्द है। वैसे बीमा-वालो का काम 'दफ्तर मे होता ही कितना है। फिर भी आज छुट्टी है इस बात के अहसास को लेकर वह पडा हुआ है। या और कोई अहसास उसे हाट कर रहा है। कभी सोचता है, उठे, तैयार हो और चल दे। सारी बात आखो के सामने से गुज़रती है— स्कूटर का घर से निकलना, स्टार्ट करना, फिर 'भरररर' से चल देना। और उस बीच मापी की आखे ।

मापी समझ नही पा रही है कि वह आज इतना अलसाया-सा क्यो है। उसने सिर्फ इतना कहा है 'आज दफ्तर बन्द है।' मापी जानती है छुट्टियो के दिन उसे कुछ ज्यादा ही काम होता है। आज वह अखबार पढ रहा है। ब्रश करके उसने नाश्ता कर लिया है और फिर अखबार के पन्ने उलट रहा है। मापी एक कहानी पत्रिका की शौकीन है जिसमे फिल्मी कलाकारो के शादी-व्याह, रोमास और झगडे की बहुत खबरे और तस्वीर छपती है। वह उस पत्रिका के पन्नो पर नजरे दौडा रहा है। फिर उसे लगता है, उठू, तैयार होकर निकलू। उसके सामने से वही बात गुज़रती है · स्कूटर, स्टार्ट, 'भरररर', मापी ··

उसका स्कूटर भी उसी मेक का है जो मेहरा का था। मापी को उसने नही बताया कि दफ्तर बन्द क्यो है। मापी मेहरा को जानती है। वह उसे नही बताना चाहता कि मेहरा एक एक्सीडेंट मे मर गया है।

मापी नही पूछती है, दफ्तर क्यो बन्द है। मापी उससे कुछ भी नही पूछती। क्या पूछे ? उसका कुछ भी तो निश्चित नही है। उसके आने-जाने, खाने-पीने की सारी उत्सुकता और चिन्ता तटस्थता मे बदल गई है।

जब कभी वह उसके साथ जाती है, पिछली सीट पर बैठी हुई वह उसके कधो

पर हाथ रख लेती है। वह स्कूटर चलाता हुआ उसके हाथों का कसाव अनुभव किया करता है—सामने से ट्रक आ रहा है, कसाव बढ़ता है ' पीछे से तेज कार आ रही है···किनारे कर लो···बस को निकल जाने दो ··वह लड़का सड़क पार कर रहा है···ज्यादा तेज़ नही·· तेज़ मत चलाया करो ··

उसने अपने स्कूटर पर विंडस्क्रीन लगवा लिया है। चलाते हुए उस ओर की सभी चीजें नजर आती हैं परन्तु सर्दी की तेज़ हवा और गर्मी की लू से बचत होती है। जब वह पारदर्शी स्क्रीन लगवाकर पहली बार चला तो उसने अपने को अधिक सुरक्षित महसूस किया। उसे लगा, उसके और सड़क पर सामने से दौड़ती आती दुर्घटनाओं के मध्य एक हिफाज़ती दीवार आ गई है। भापी बहुत देर तक उस स्क्रीन को देखती रही। हाथ लगाकर उसने प्लास्टिक की उस पतली चद्दर को देखा जिसके बाहर असख्य डरावनी आकृतियां शोर-गुल करती हुई फैल रही थीं।

उस दिन वह लौटा तो उसे भापी की आकृति भी डरावने प्रेत की-सी लगी। उसने उसे पजामा दे दिया, खाना परस दिया। पर वह चुप थी। वह भी चुप था क्योंकि सारा दिन स्कूटर पर दौड़ते-दौड़ते निकल गया था, कोई खास काम नही हुआ था। पर भापी के गालों की हड्डियां इतनी उभरी हुई क्यों लग रही थीं ? उसकी आंखों के नीचे का काला घेरा इतना गहरा क्यों हो गया था ? और यह वही रात थी। वह किस तरह बेतहाशा होकर अपने होंठ उसके होंठों पर रगड़ रही थी। अपने दोनों हाथों में उसने उसका चेहरा जैसे जकड़ लिया था · जैसे वह उसका पति नहीं, एक मामूली-सा जीव था जो किसी प्रेत के हाथों दबोच लिया गया था।

फिर कुछ देर बाद वह सुबक रही थी—लगातार सुबक रही थी। उसने अनुभव किया कि रोते-रोते उसका चेहरा सिर्फ डरावना ही नहीं रहा है, बल्कि वीभत्स हो गया है।

उसने दो-चार बार पूछा, पर भापी ने कुछ बताया नहीं। वह उसके गले मे बाहें डाले, उसकी छाती में मुह छिपाए रोती रही। फिर उसे लगा वह एकदम शिथिल हो गई है। वह शायद सो गई थी ··या शायद बेहोश हो गई थी।

सुबह भाभी की शक्ल पर डरावनापन तो नही था पर वह ऐसी लग रही थी जैसे किसी लम्बी बीमारी से उठी हो। वह चाय पीकर अखबार पढ रहा था कि उसने एक पत्र उसके सामने रख दिया। उसने शैल की लिखावट पहचानी— "भाभी, एक दर्दनाक खबर दे रही हू। परसो तृप्ता के पति तनेजा साहब का राज-पथ पर एक्सीडेण्ट हो गया। उनके स्कूटर को पीछे से आती एक कार ने टक्कर मार दी थी। विलिंगडन हास्पिटल मे चौबीस घटे बेहोश रहने के बाद कल उनका स्वर्गवास हो गया चार महीने मिसेज तनेजा कहलाकर तृप्ता फिर से मिस तृप्ता हो गई है ।"

तनेजा की तेरहवी के दिन बहुत भीड-भाड है। वह और भाभी एक बार तृप्ता के पास गए है। शादी के बाद वे एक-दो बार ही उससे मिले थे। जब उन्होने उसे रगीन काजीवरम की साडियो मे देखा था। आज वह फिर वैसी ही नजर आ रही है जैसी हमेशा नजर आती थी। शैल कह रही है, "मै तृप्ता से कहती हू कुछ भी तो नही हुआ। यह समझो कि तीन-चार महीने का यह समय एक सपना था। या यो समझो तुम छलाग लगाकर यह समय लाघ गई हो बस। जो जिन्दगी चार महीने पहले तुम्हारे पास थी, उसे तो किसीने नही छीना है। आखिर फर्क क्या पडा है ?"

भाभी दूर रिश्तेदारो से घिरी तृप्ता की ओर देखती है। फिर धीरे से कहती है, "सिर्फ थोडा-सा फर्क पडा है। इस छलाग से पहले वह कुवारी थी अब विधवा है।"

भाभी की बात सुनकर वह हिल-सा जाता है। शैल भी अस्थिर-सी होती है पर फिर सभल जाती है।

"यह कोई फर्क नही है आज के जमाने मे कौन पूछता है इन सर्टीफिकेट्स को। अब मुझीको देखो। मै क्या हू ? कुवारी ? विवाहिता या विधवा ? पर मै कहा परवाह करती हू। मैं जानती हू कि मैं •• बस मैं हू शैलजा। जब जिन्दगी मे अपना रास्ता खुद ही बनाना हो, उसपर खुद ही चलना हो तो क्या सधवा क्या विधवा ?"

वापस मुडते हुए भाभी ने अपना हाथ उसके कधे पर रख लिया है। विडस्क्रीन से सामने की सभी चीजे नजर आती हैं। काला-स्याह धुआ छोडती हुई बसें ••

'भौ-भौ' करती हुई कारें मिट्टी गिराते हुए ट्रक · तेज घोडे दौडाते हुए रेहड़े-वाले और फिर उस पारदर्शी स्क्रीन से उसकी नजर इन सभीको भेदती हुई बहुत दूर तक देखती चली जाती है और वह महसूस करता है कि उसके कधे पर मार्था की उगलियो का कसाव तेज हो गया है।

फोकस

वह वस्ती भी पुरानी थी, वह मकान भी पुराना था पर उसके अन्दर का रूप-रग विल्कुल नया था। मैं वहा कुछ देर से पहुचा। चदर ने छूटते ही कहा, "इस महानगर मे आ गए हो न। अब पता लगेगा कि किसी जगह पर समय पर पहुचने के लिए समय की कितनी वर्बादी करनी पडती है।"

लकडी की सीढिया चढकर हम ऊपर पहुचे। गैलरी से निकलकर जब उसने मुझे अपने ड्राइग रूम मे वैठाया तो लगा, इस पुरानी विल्डिग मे इस नये घर को ढूढ निकालना आसान नही है। सारे कमरे मे जूट का कारपेट विछा हुआ था। स्टील का चमकता हुआ सोफा-सेट, स्टील का ही दीवान और उसपर रग-विरगी छोटी-छोटी गद्दिया, वीच मे एक लम्वी-सी टेवल जिसके निचले हिस्से मे आकर्षक आवरणो वाली देशी-विदेशी फिल्मी पत्रिकाए और ऊपर काला शीशा जडा हुआ था।

चदर अन्दर से शर्वत ले आया तो वोला, "मम्मी और पापा मार्निग शो देखने गए हैं। दीदी वाथरूम मे है और रानी कपडे वदल रही है।"

यह शायद मुझे कुछ देर अकेले वैठाने की उसकी कैफियत थी।

मैंने एक मैगजीन निकाल ली। उसके पन्ने पलटते हुए उसके ड्राइग रूम पर नजर दौडाई। प्लास्टिक के रग-विरगे फूल और वेलें जगह-जगह लगी थी।

चदर अपनी गोद मे पूसी को वैठाए हुए पुचकार रहा था और मै धीरे-धीरे सिप करता हुआ शर्वत का गिलास समाप्त कर रहा था। पर गिलास का शर्वत जैसे-जैसे नीचे उतर रहा था, एक अजीव-सी परेशानी मेरे मन मे भर रही थी। मै और चदर दोनो ही गुमसुम वैठे हुए थे। शायद इसी तरह वैठे हुए हमे काफी देर हो चुकी थी। मम्मी और पापा के मार्निग शो जाने, दीदी के वाथरूम मे होने और रानी के कपडे वदलने की सोच ने जैसे हम दोनो की आपसी वातचीत पर ताला लगा दिया था। चदर वार-वार उस दरवाजे की ओर देख रहा था जहा से

मम्मी-पापा या दीदी और रानी के आने की सम्भावना थी और भटकती-सी आखे लेकर पूसी को पुचकारने लगता था। ऐसे मे मुझे लगता कि मेरे सामने का यह शर्बत का गिलास मुझे एक गहरी दुविधा से बचाए हुए है।

"प्रतिभा दीदी तो दिल्ली मे ही होगी ?"

चदर की भी जैसे जान मे जान आई। बडे उत्साह मे बोला, "दीदी और जीजा जी कश्मीर गए हुए हैं। आजकल दिल्ली मे तो बस आग बरस रही है।"

मई-जून के महीने मे दिल्ली की तपिश अपने-आपमे एक पूरा विषय है। बडी आसानी से दस-पन्द्रह मिनट इस विषय पर बोला जा सकता है। चदर ने मौके का पूरा फायदा उठाया। बम्बई की उमस भरी गर्मी मे बैठे हुए हम दोनो ने दिल्ली की लू और तपिश पर एक-दूसरे से बढ-चढकर बातचीत की।

इतने मे शीला दीदी आ गई। सद्य स्नाता, टपकते हुए केश-जल और सफेद साडी-ब्लाउज मे लिपटी हुई शीला के चेहरे पर बडी सजीली मुस्कराहट बिखरी हुई थी। बैठती हुई बोली, "खड्गपुर से चदर ने तुम्हारे बारे मे हमे इतना कुछ लिखा और बताया कि पहली बार देखने के बाद भी तुम नये नही लग रहे हो।"

"आप भी मुझे नई नही लग रही है।" मैंने कहा और सब हस पडे।

"रानी अभी तैयार ही हो रही है?" चदर के स्वर मे अजीब-सी उलझन थी।

शीला हस पडी। बोली, "रानी से मिलने कोई भी आ जाए, वह हर किसी को प्रोड्यूसर ही समझती है और तैयार होने मे उतना ही वक्त लगाती है। ऐक्ट्रेस जो ठहरी•••।"

तभी मैने देखा, एक सजी-सवरी लडकी हाथ जोडे मेरे सामने खडी है। मैं अपनी जगह पर जरूर उठ खडा हुआ होऊगा, हाथ जोडे होगे और मुझे याद नही कैसी घबराहट का मैंने उस समय परिचय दिया होगा।

रानी शीला के साथ ही बडे सोफे पर बैठ गई। उसकी बडी-बडी आखो मे जल की लम्बी लकीर खिंची हुई थी। उसके केश सिर पर अनेक उल्टे-सीधे ...व लेकर तीन अलको मे उतरे हुए थे। उसके कपोलो पर रूज की मायाम ...ली झलक रही थी। होठो पर लगी हुई हल्की लिपस्टिक और उसकी गुलाबी रग की टाइट सलवार की चौडी पट्टी के तग पायचो मे निकले हुए दो पैर सफेद कबूतरो की तरह थिरक रहे थे। कसी हुई स्लीवलेस कमीज मे निकली हुई उसकी गोल, पतली बाहे ट्यूब लाइटो-सी चमक रही थी।

बैठने के बाद उसने बडे फिल्मी अदाज से मुस्कराते हुए कहा, "माफ कीजिएगा, मुझे थोडी देर हो गई।"

चदर शायद जानता था कि वह यह बात कहेगी। वह बडी तीखी आवाज मे बोला, "तुम समझती हो, तुमसे हर मिलने आने वाला कोई न कोई प्रोड्यूसर ही होता है। अरे, यह तो अपना श्याम है। इसके सामने इतनी सिगारपट्टी न करती तो क्या बिगड जाता। कौन तुम्हारे लिए यह थाली मे कान्ट्रेक्ट सजाकर लाया था।"

शीला और रानी दोनो उसकी बात पर हस पडी। रानी मुझसे बोली, "यह चदर मुझसे बहुत जलता है। चार साल आपके साथ खड्गपुर मे रहा, तो यहा बडी शान्ति रही। अब आ गया है तो सबसे ज्यादा मुसीबत मेरी ही है। खड्गपुर मे यह इजीनियर तो बन गया। थोडा आदमी भी बन जाता तो कितना अच्छा रहता।"

और वह खिलखिलाकर हस दी। उसका लम्बूतरा मुह थोडा और लम्बा हो गया।

मैंने पूछा, "अब आप किस फिल्म मे काम कर रही है ?"

"आजकल दो फिल्मो की शूटिंग चल रही है। मद्रास की भी एक फिल्म के लिए बातचीत चल रही है। बात तय हो गई तो उसमे हीरोइन का रोल करूगी। आपने मेरी पहली फिल्म 'टूटी दीवार' देखी ?"

'टूटी दीवार' मैंने और चदर ने साथ-साथ कलकत्ते मे देखी थी। मैंने सिर हिला दिया।

"उसमे मेरा रोल आपको कैसा लगा ?"

मैंने देखा, रानी की आखो मे बडी मासूम उत्सुकता झलक आई है। मैं बोला, "उसमे आपने एक अल्हड लडकी का रोल काफी अच्छे ढग से निभाया है।"

"यह जिन्दगी मे भी उतनी ही अल्हड है।" शीला ने मुस्कराते हुए कहा, "अभी उस दिन समुद्र मे डूबते-डूबते बची है।"

"कैसे ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

मेरे चेहरे पर उभरी हुई उत्सुकता का रानी ने इन्तजार नही किया। वह एक भरे हुए रिकार्ड की तरह बोलने लगी, "ऐसा हुआ, कि पिछले इतवार को यग स्टारो के अपने ग्रुप ने पिकनिक मनाने का फैसला किया। चार लडके थे, चार लडकिया। हममे एक प्रोड्यूसर का लडका अपने बाप की कन्वर्टेबल कार भी ले

आया। हम लोगो ने खाने-पीने का कुछ सामान डाला गाडी मे, और चल दिए गाते-बजाते। सुबह पाच-साढे पाच का समय था। हममे से एक लडका सडक पर चलने वाले किसी सेठिये की तरफ इशारा करके गाता—

"तेरी प्यारी-प्यारी मूरत को किसीकी नजर न लगे ·

" और हम लोग बडे राग से उसीकी तरफ इशारा करके एक साथ ज़ोर मे चिल्लाते —

" चश्मे बद्दूर ·

" फिर हम लोग खिलखिलाकर हस पडते और वह सेठिया झेप जाता। बीच-बीच मे हम लोग अपनी गाडी सडक पर ही रोक लेते और गाडी से उतरकर रॉक-एन-रोल शुरू कर देते। सैकडो आदमियो की भीड जमा हो जाती और हम लोग गाडी पर बैठकर फुर्र हो जाते। इस तरह गाते-बजाते मस्ती करते हम लोग मलाड के आगे मारवा बीच तक पहुच गए। वहा हम लोग बहुत देर तक बालू पर खेलते रहे। फिर सबने सोचा, चलो बोटिंग करे। मारवा बीच के सामने ही मनोरी आइलैंड है। हम लोगो ने एक छोटी-सी नाव ली और आठो उसपर सवार हो गए। नाव चलाना तो किसीको ठीक से आता नही था। लगे सबके सब चप्पू मारने। नाव किनारे से हटकर बीच की ओर जाने लगी। हमारे साथ की एक लडकी जरा मोटी-सी थी। सब लोग उसीको बहुत छेड रहे थे। जब नाव जरा गहरे पानी मे आ गई तो एक लडके ने उसे जोर से चुटकी काट ली। वह बडे जोर से चीखी और अपनी जगह पर उछल पडी। बस फिर क्या था। बैलेन्स बिगड गया औरनाव उलट गई। सबके सब पानी मे जा गिरे। हम चीखने-चिल्लाने लगे। अच्छी बात तो यह थी कि चारो लडके तैरना जानते थे। उन्होने हममे से एक-एक को सम्भाला। मै तो पाच-सात डुबकिया खा चुकी थी। नाक-मुह मे समुद्र का खारी पानी घुस गया था। मौत मुह बाए नजर आ रही थी। उसी समय मनोरी आइलैंड से आती हुई एक नाव हमारे पास आ गई और उसपर बैठे हुए लोगो ने हमे ऊपर चढाया। किसी तरह हम लोग किनारे आए।"

तभी चदर के मम्मी-पापा आ गए। पापा अपना हैट एक ओर रखते हुए बोले "बेटा, माफ करना, हम लोगो को थोडी देर हो गई।"

फिर उन्होने जरा शरारती लहजे मे चदर की मम्मी की ओर देखा, जिनके स्थूल शरीर से पसीना बरसाती नाले की तरह फूटा हुआ था और चेहरा पाउडर

और लिपस्टिक के मद्धिम पड जाने से रग और कलई उतरी दीवार की तरह हो रहा था। वोले, "मैंने इनसे वहुत कहा कि आज श्याम आने वाला है, पर इतवार को मार्निंग-शो देखे बिना इन्हे खाना हजम नही होता।"

"पापा, 'किस मी अगेन' देखी न आपने ? कैसी लगी आपको पिक्चर ?" रानी ने पूछा।

"सो सो " पापा ने मुह विचकाते हुए कहा।

शीला मम्मी और पापा के लिए शर्वत ले आई। शर्वत पीकर वे कपडे वदलने चले गए। हम लोग वैठे इधर-उधर की वाते करते रहे या बाते सुनते रहे, क्योकि सबसे ज्यादा रानी वोल रही थी। वह अपने ऐक्टिंग स्कूल की, शूटिंग की और अपने फिल्मी एडवेचरो की बाते सुना रही थी—"दीदी, याद है न तुम्हे, जब 'टूटी दीवार' मे मेरा डूबने और राजदीप का मुझे वचाने वाला शॉट लिया गया था। ओ वावा, याद करती हू तो रोगटे खडे हो जाते हैं याद है न आपको वह सीन, जब मैं अपनी मामी से लडकर नदी मे डूबने जाती हू और राजदीप मुझे बचाता है। पिक्चर मे तो वह सीन एक मिनट का भी नही है। पर उस शॉट को फिल्माने मे पूरा एक दिन लगा था। लोकेशन शूटिंग के लिए सारी यूनिट नासिक गई थी ·· दीदी, तुम भी तो साथ गई थी न । डाइरेक्टर ने गोदावरी मे एक कम गहरी जगह ढूढकर शूटिंग की तैयारी की। चारो तरफ जाल लगाए गए। एमरजेन्सी के लिए दो-तीन वोट भी लगे हुए थे। डाइरेक्टर ने कम से कम मुझे दस बार नदी मे कुदाया और दस वार राजदीप ने उठाकर मुझे पानी से निकाला। डाइरेक्टर भी ऐसा झक्की था कि शॉट को ओ० के० ही नही करता था। आखिरी वार तो मेरी हालत इतनी खराव हुई कि कूदने के वाद मुझे होश ही नही रहा कि मैं कहा हू। मैं तो समझी सचमुच मै डूव ही गई हू। मुझे कुछ खवर नही कि राजदीप ने मुझे कैसे निकाला। पर वह शॉट इतना नैचुरल था कि डाइरेक्टर ने झट से ओ०के० कर दिया।"

इतने मे पापा कपडे वदलकर आ गए। वैठते हुए वोले, "रानी, तुमने श्याम को मारवा वीच वाला ऐक्सीडेंट सुनाया ?"

"हा पापा, सुना दिया और उसके वाद पापा, मुझ पर जो थकान चढी थी कि दो दिन तो मै पलग से नीचे नही उतरी थी।"

रानी की इस बात पर सभी हस दिए, पापा, मम्मी, शीला और चन्दर। पापा

मेरी ओर उन्मुख हुए, "देखा, आज के लडके-लडकियो को अपनी जान की भी चिन्ता नही।"

सामने लगी हुई घडी मे समय एक से ऊपर हो गया था। एक अजीब-सी बेचैनी मुझे महसूस हो रही थी। मुझे भूख लग रही थी। शायद यह बेचैनी उसीकी हो। या शायद इसलिए कि दो खूबसूरत लडकिया सामने बैठी थी।

खाना खाकर सभी लोग फिर वही आ बैठे। रानी ने मेरे सामने अपने दो अलबम लाकर रख दिए जिनमे अलग-अलग ढग की उसकी बहुत-सी तसवीरे लगी हुई थी। मै उन तसवीरो को देखने लगा। इतने मे कालबेल बजी और रानी उधर चली गई। आई, तो उसके साथ एक ऊट जैसी गर्दन वाला लम्बा आदमी था। लम्बी-सी नाक, पिचका हुआ मुह, रुखे गन्दे बाल, कम से कम तीन दिन की पहनी हुई पैंट, बुशर्ट और जूते धूल से सने हुए।

रानी ने परिचय कराया, "आप है मशहूर फिल्म जर्नलिस्ट मि० फूल।"

'फूल' रानी ने इस ढग से कहा कि मि० फूल सहित सबको हसी आ गई।

"अग्रेजी वाला नही, हिन्दी वाला।" रानी फिर खिलखिला पडी।

मि० फूल के लिए चाय आ गई और कुछ बिस्कुट भी। अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करते हुए उन्होने चाय मे बिस्कुटो को डुबो-डुबोकर खाना शुरू किया।

"मेरा इन्टरव्यू कही निकला?" रानी ने पूछा।

"अगले महीने बडी सज-धज से 'रगमच' मे निकल रहा है आपने मूवीलैंड के पिछले अको मे 'टूटी दीवार' की रिव्यू पढी थी?" फूल ने पूछा, "उसमे आपको फिल्म-जगत मे इस साल की सबसे बडी 'फीमेल एट्री' माना गया है।"

"नही। मैंने तो नही पढी।" रानी ने बडी उत्सुकता से कहा।

फूल ने मूवीलैंड का वह अक दिखाया। सभी ने बारी-बारी से रिव्यू पढी।

फूल ने बडे रहस्योद्‍घाटन के ढग से रानी के बिल्कुल निकट अपना मुह ले जाकर कहा, "यह रिव्यू मैंने ही निकलवाई है। इस पत्र का सम्पादक मेरा मित्र है। अब आप देखिएगा आपकी मार्केट कैसे उठती है।"

"इस बीच मेरी कोई न्यूज वगैरह निकली है?" रानी ने पूछा।

"नही, इस बीच की अपनी कोई खास बात बताइए तो उसकी गरमागरम न्यूज बनाकर फ्लैश कर दू।"

"आपको मैंने मारवा बीच वाली घटना सुनाई या नही?"

"कौन-सी मारवा बीच वाली घटना ?"

रानी उसे वही सुनाने लगी । चन्दर किसी कहानी मे डूबा हुआ था । शीला अपने होने वाले बच्चे के मोजे बुन रही थी । पापा अखबार देख रहे थे और मम्मी अपने सोफे पर ही ऊघ गई थी । मैने भी एक पत्रिका हाथ मे ले ली ।

रानी घटना सुना चुकी तो फूल ने चुटकी बजाते हुए कहा, "बस अगले हफ्ते देखिएगा, इसी घटना की कितनी जोरदार रिपोर्ट प्रेस मे आती है। और आप जरा मेरा रग भी देखिएगा जो मै इस घटना पर चढाऊगा । हा, अपने कुछ नये फोटोग्राफ दे दीजिए ।"

रानी ने अपनी तस्वीरो का एक बडा लिफाफा लाकर फूल को दे दिया। उसमे से उसने रानी की आठ-दस तसवीरे छाट ली और कुछ सोचता हुआ बोला, "इस वीक क्वीज वीकली के बैक पेज पर जो आपका फोटो छपा है वह आपने उन्हे भेजा था ?"

इस समय मेरे हाथ मे क्वीज वीकली ही था । फूल की बात सुनकर मैने उसका अन्तिम पृष्ठ उलटाया । देखा, रानी का एक उत्तेजक चित्र छपा है ।

रानी बोली, "नही, मैंने तो नही भेजा । एक दिन अनरसे ने मेरी कुछ तसवीरे उतारी थी । शायद उसने भेजी हो ।"

फूल कुछ गम्भीर हो गया । बडे उदास स्वर मे बोला, "आपने अपनी पब्लिसिटी का काम मुझे दिया है तो पूरी तरह मुझी से कराइए। एक बात आपको बताऊ, यह अनरसे बडा घटिया आदमी है । ऊपर से देखने मे बडा मीठा पर अन्दर से उतना ही काला । इस तरह की पब्लिसिटी से वह आपको चीप बना देगा और आगे चलकर आपको ब्लैकमेल करने की कोशिश करेगा । देखिए, आगे से आपकी सभी तसवीरे मेरे जरिये ही उतरेगी और अखबारो को भेजी जाएगी । आप देखती जाइए, साल-भर के अन्दर आपको चोटी की हीरोइन न बना दिया तो मेरा नाम फूल नही कुछ और रख दीजिएगा ।"

फूल तस्वीरो को इधर-उधर पलटते हुए बोला, "देखिए, आपकी पब्लिसिटी के लिए मै दो-एक स्टट छोडना चाहता हू । हर स्टार अपनी पब्लिसिटी के लिए ऐसे स्टट करता है । इस लाइन मे यह बहुत ज़रूरी है ।"

रानी मुस्कराती हुई बोली, "कौन-सा स्टट छोडना चाहते है ?"

"मै यह खबर उडाना चाहता हू कि 'टूटी दीवार' के हीरो राजदीप के साथ

आजकल आपका गहरा रोमास चल रहा है। और आप जल्दी ही उससे शादी करने वाली है।"

फूल की बात सारे कमरे मे बिजली की तरह चमक गई। पापा का अखबार पढना बन्द हो गया। मम्मी अपनी ऊघ मे जाग उठी। शीला का मोजा बुनना रुक गया। और चन्दर ने अपनी कहानी पत्रिका उलट दी। सबके सब रानी की ओर देख रहे थे और रानी के चेहरे पर लज्जामिश्रित मुस्कराहट छाई हुई थी।

"पर मेरा तो राजदीप से कोई रोमास नही है।"

"आप समझती नही।" फूल ने समझाते हुए कहा, "इस बात की पब्लिसिटी वैल्यू बहुत है। आप देखती तो है कि हर चार-छ महीने बाद किसी न किसी बडे हीरो-हीरोइन के रोमास की खबर निकलती ही रहती है। इन्हे कौन निकलवाता है? बडे-बडे स्टार खुद यह काम करते है। पहले वे अपने रोमास की खबरे निकलवाते है और फिर खुद उसका खडन करते है। इससे उनकी पब्लिसिटी होती है। आपको भी स्टार बनना है तो यह सब करना पडेगा। इधर मैं यह खबर निकलवाऊगा, उधर आप कुछ ही दिनो बाद उसका खडन कर दीजिएगा। देखिए, कितनी जल्दी आप लाइम लाइट मे आती हैं।"

रानी ने पापा की ओर देखा। वे बडे ध्यान से फूल की बात सुन रहे थे। बोले, "फूल साहब, आप बिल्कुल ठीक कहते है। आई एग्री विद यू। पब्लिसिटी की बडी वैल्यू होती है। और फिल्म लाइन मे तो इसके बगैर बिल्कुल गुजर नही। जब मैं लन्दन मे था तो वहा के स्टारो के बारे मे भी ऐसे स्टट सुनता था। आप दीजिए यह खबर।"

"और आपके बारे मे मेरी दूसरी खबर होगी, बम्बई से पूना जाते समय आपकी मोटर ३००० फुट की ऊचाई से एक खड्ड मे जा गिरी। मोटर चकनाचूर हो गई। पर आप बाल-बाल बच गई। देखना इस खबर के छपते ही आपके प्रशसको के सैकडो पत्र आपके पास आएगे।"

फूल की बात पर परिवार के सभी लोग बहुत हसे।

शाम की चाय डाइनिंग टेबल पर लग चुकी थी। सब लोग उठकर वहा जा बैठे। चाय पीते-पीते बाते होती रही। पापा हालीवुड और लन्दन के स्टारो के रोमासो के बारे मे बडी दिलचस्प बाते सुनाते रहे।

शाम को चन्दर मुझे बस-स्टॉप तक छोडने के लिए आया। उसने दिन-भर

मुझसे यह नही पूछा था कि मेरी ट्रेनिग कैसी चल रही है। उसका अपना क्या इरादा है, इस बारे मे उसने कोई बात नही की थी। मुझे लगा, मेरे साथ चलते हुए वह धीरे-धीरे कुछ बुदबुदा रहा है रानी की कीमत धीरे-धीरे एक लाख पहुच गई है उसकी दो-एक फिल्मे हिट हो जाए तो हम लोग यह मकान बदल ले ।

घिराव

सारा दिन वदली घिरी रही थी। ठडी हवा, वीच-वीच मे पानी की वौछार और दिसम्बर के आखिरी दिन। सारे साल मे आठ-दस दिन ही ऐसे होते है। तब दिल्ली मे ही ऐसा महसूस होता है जैसे आप किसी योरोपीय शहर मे हो। ठड वदली कोहरे और सिसकियो से भरा और घिरा ऐसा दिन बहुत पराया-पराया-सा लगता है।

सुम्मी ने खिडकी का पर्दा हटाकर झाका। उसके वाल उडने लगे। उसके लम्बूतरे चेहरे पर सलवटे इस तरह उभर आई जैसे उसने हवा से वचने के लिए अपने चेहरे पर एक घेरा खीच लिया हो।

"पानी तो रुका हुआ है।"

"अच्छा ··।" ओमी ने इस तरह कहा जैसे पानी वरसने और रुकने मे कोई अर्थ नही है।

"आओ थोडी देर वाहर घूमे।" फिर वही वोला।

सुम्मी चौक उठी, "इस ठड मे ? अच्छा चलो।"

कोटो मे लिपटी हुई दो सिकुडी-सी परछाइया कर्जन रोड के फुटपाथ से आगे वढ रही थी। लैम्प-पोस्ट की हलकी-सी रोशनी मे सिर्फ आकृतियो का आभास हो रहा था। सडक से गुजरने वाली कारो, स्कूटरो और वसो मे सिर्फ रोशनियो की भाग-दौड। फुटपाथ के दोनो किनारे एकदम अछूते।

एकाएक सुम्मी रुक गई। पीछे लम्बे कोट मे ढकी एक छाया उनके पास-पास होती जा रही थी।

"क्यो ?" ओमी अपनी ओर वढ रही उस छाया को देखने लगा।

सुम्मी चुप थी। वह सडक की ओर देख रही थी। गाडियो की रोशनी मे उसका चेहरा जग-वुझ रहा था।

पद-चाप पास आते हुए तेज हुए फिर पास से गुजरते हुए मद्धिम पडते गए।

सुम्मी ने ओमी का हाथ थाम लिया और चलने लगी। ओमी को लगा उसकी सास तेज़ है और उसके हाथ की उगलियो मे काफी कसाव है।

"यह आदमी तुम्हे अमर जैसा नही लग रहा था?" सुम्मी ने पूछा।

"कभी-कभी तुम्हे हर आदमी अमर जैसा लगता है।" वह बोला, "पता नही तुम अमर से इतना डरती क्यो हो?"

"डर ? तुम इसे डर कहोगे?" वह बोली, "मैं अमर से डरती नही···शायद डरती भी होऊ। डर इस बात का नही है कि वह मुझे नुकसान पहुचाएगा। मै जानती हू वह बहुत बुजदिल किस्म का आदमी है। पर पता नही क्या बात है। अपने आसपास उसकी उपस्थिति का आभास मुझे बेचैन कर देता है। क्या मेरी यह बेचैनी डर है?"

"मुझे तो डर ही लगती है। खैर, यह बताओ कि अब अमर का अस्तित्व तुम्हारे लिए है कितना?"

"मेरे लिए उसका अस्तित्व?" वह सोचने-सी लगी, "तर्क से, बुद्धि से कहू तो मेरे लिए उसका अस्तित्व बस इतना है कि वह भी उन सैकडो आदमियो मे से एक है जो दिल्ली मे रहते है और जिन्हे मैं जानती हू। तीन साल से हम बिल्कुल अलग है पति-पत्नी वाला कोई रिश्ता हममे नही है। नीती से भी उसका कोई रिश्ता नही है। देहरादून मे उसकी पढाई का सारा खर्च मैं उठा रही हू। पिछले तीन साल मे वह उससे शायद ही कही मिला हो। पर यह बात सिर्फ कहने और सोचने की है। मैं यह भी जानती हू कि अभी भी मेरे लिए उसका अस्तित्व उन सैकडो आदमियो से अधिक है जिन्हे मैं जानती हू। ऐसा न होता तो सडक पर चलते-चलते पीछे से उसका आभास पाकर मै रुक क्यो जाती।"

दोनो धीरे-धीरे चलते हुए जार्ज पचम के बुत तक आ गए थे। फिर वे इडिया गेट की तरफ मुड गए। राष्ट्रपति भवन की ओर जाने वाली सडक के दोनो ओर लगी बत्तिया लम्बी रोशनी की खिची हुई लकीर की तरह लग रही थी। उनके पीछे दोनो ओर के घासल मैदानो पर गहरा अधेरा उतरा हुआ था।

"२६ जनवरी की तैयारी शुरू हो गई है।" ओमी बोला।

सुम्मी अपने बाये देखने लगी। फुटपाथ के किनारे लोहे के पोल्स पडे हुए थे। अन्दर मैदान मे भी बहुत-से पोलो का जगला-सा बन गया था।

"परेड देखने आओगी?"

"ना बाबा। इतनी सरदी मे कौन आएगा। नीती आजकल यही है। उसको कही टेलीविजन पर दिखा दूगी।"

"तुम तो खेल-तमाशो की बडी शौकीन हो।"

उसे लगा सुम्मी उसकी बात पर मुस्कराई है।

"हू नही, थी। लगता है अन्दर धीरे-धीरे सब मर रहा है। अब कहीं जाने का मन नही होता।"

"तुम कही जाने से शायद इसलिए कतराती हो कि कही अमर से मुलाकात न हो जाए।"

वह चलते-चलते उसकी तरफ देखने लगी।

"शायद यही बात हो।"

"अमर अभी भी तुम्हे बुरी तरह घेरे हुए है।"

"हा ··।" वह रुककर उसकी तरफ देखने लगी, "पर यह घिराव अमर की तरफ से नही है। यह मेरे मन का ही है। इस बीच अमर से कई जगहो पर, कई बार मुलाकात हो चुकी है। वह मेरे साथ बहुत अच्छी तरह पेश आता है। कभी वह जान-बूझकर मेरे सामने नही पड़ा। सामने पड जाने पर उसके मुह से सिर्फ इतना निकलता है, कैसी हो। बस ·। फिर भी उसकी उपस्थिति के अहसास मात्र से मेरा रग उडने लगता है।"

"इसका कारण जानती हो ?"

"किसका कारण ?"

"इस बात का · कि तीन साल हो गए पर अमर के घिराव से तुम अभी तक मुक्त नही हुई।"

"मैं नही जानती।"

"मैं बताता हू। तुम और अमर आपस मे बहुत लडकर अलग नही हुए। लेने से, एक-दूसरे के ऊपर खूब दोषारोपण कर लेने से, आपस मे मुकदमेबाजी कर लेने से फायदा होता है। बाद मे तब कोई किसीको इस तरह घेरता नही।"

उसे सुम्मी की हल्की-सी हसी सुनाई दी।

"अन्दर चले ?"

"चलो।"

दोनो मैदान मे आकर घास पर चलने लगे। बूट और बैली से ढके पैरो से

भी वे महसूस कर रहे थे, घास गीली है। सुम्मी का एक हाथ ओमी के हाथ मे था और एक से वह अपनी साडी सभाल रही थी। पत्थर की बनी एक बेच के पास से वे गुज़रे तो उसपर बैठा एक जोडा कसमसाने लगा। ओमी ने सुम्मी को पकडे हुए हाथ की उगलिया कसी। कुछ और दूर घने पेड के पास पत्थर की एक बेच मटमैले धब्बे-सी दिख रही थी। पास पहुचकर ओमी ने अपना रूमाल निकालकर उसे झाडा फिर हाथ लगाकर देखा।

दोनो बैठ गए।

बैठते ही सुम्मी के मुह से सी-सी निकलने लगी।

"क्यो ?"

"बडी सर्दी है।" वह अपने-आपमे सिकुडने लगी।

ओमी ने बाह फैलाकर उसे घेर लिया। सुम्मी उससे बिल्कुल सट गई। पर दोनो के शरीर पर मोटे-मोटे कोट थे और शरीर सान्निध्य उनमे दबा हुआ था।

सुम्मी अभी भी सी-सी कर रही थी।

ओमी के एक हाथ की उगलिया उसके होठो पर फिसलने लगी।

तभी उसे लगा पीछे से कोई निकला है। उसने मुडकर देखा। एक लम्बा-सा आदमी पतलून मे हाथ डाले, सिर झुकाए चला जा रहा था।

सुम्मी ने अपना सिर उसकी गोद मे डाल दिया।

वह उसके बालो मे उगलिया चलाने लगा।

उसे लगा सुम्मी सिसक रही है।

"सुम्मी सुम्मी··।" उसने उसका सिर उठाना चाहा। पर सुम्मी ने अपना सिर जैसे उसकी गोद मे गाड दिया था। और उसकी सिसकियो का स्वर तेज़ होता जा रहा था।

वह बुत बना बैठा था।

तभी उसे लगा सामने से एक काला आकार उसकी तरफ बढ रहा है।

"सुम्मी, उठो उठो · देखो कोई आ रहा है · यह क्या पागलपन है ··उठो।" पर वह उसी तरह सिर गडाए सिसकती रही।

और वह आकार एकदम उनके सामने आकर रुक गया।

"खडे हो जाओ।"

उस आदमी के हाथ मे एक डडा था और अधेरे मे उसकी आखें कितनी चमक

रही थी।

मुम्मी ने हडवडाकर अपना सिर उठाया।

ओमी खडा हो गया, "क्या है ?"

"क्या है · ? अभी वताता हू।" वह आदमी कडककर वोला, "चल मेरे साथ। पव्लिक प्लेस पर वदमाशी करता है। वता यह कौन है तेरे साथ ? तेरी वीवी है ?"

ओमी ने सुम्मी की ओर देखा। वह खडी अपने कोट के वटन वद कर रही थी।

उसके मुह से निकला, "हा।"

"तो चलो, थाने चलकर अपना वेरीफिकेशन कराओ क्यो इन्सपेक्टर साहव ?"

ओमी ने पीछे मुडकर देखा। एक छह फुट लम्वा आदमी खाकी-सी पैन्ट और खाकी-सी ऊनी कमीज़ मे उसके पीछे खडा था।

"मैंने इन्हे खुद देखा है।" वह वोला, "ले चलो इन्हे।"

पहले आदमी ने ओमी की कलाई पकड ली। उसे लगा यह हाथ नही हड्डियो का कडा शिकजा है।

"यहा वैठना क्या कोई जुर्म है।" सुम्मी वोली, "चलो, जहा चलते हो।"

ओमी ने अपनी कलाई छुडाई और चलने लगा।

वह आदमी वडवडा रहा था, "अभी पता चल जाता है। यह पव्लिक प्लेस है·· वदमाशी करने की जगह नही ·।"

वह उन्हे मैदान के दूसरे छोर की तरफ ले जा रहा था।

ओमी के दिमाग मे कौंधने लगा।—थाना · वेरीफिकेशन सुम्मी सुमिन्दर साहनी वाइफ ऑफ अमर साहनी पता पेशा वयान · उसका नाम · पता। पेशा · वयान···शायद अखवार मे खवर ।

"सुनो···।" वह पहले आदमी से वोला, "वेकार क्यो परेशान कर रहे हो ?"

"परेशान ·?" वह आदमी जैसे चीखा, "परेशान तो तुम लोगो ने कर रखा है। उस रोज रिंग रोड पर दो लडकियो का कत्ल हो गया। आजकल हमारी स्पेशल ड्यूटी लगी हुई है।"

उस आदमी ने आखे तरेरते हुए उसकी आखो मे झाका। फिर धीरे से पूछा,

"यह तेरी दोस्त है ना ?"

"हा।" ओमी को लगा जैसे उसके स्वर मे क्षमा-याचना भर आई है।

"इन्सपेक्टर साहब को खुश कर दे नही तो तू बचेगा नही।"

दूसरा आदमी कुछ दूर-दूर चल रहा था।

"क्या दे दू ?" ओमी ने पूछा।

"ला, क्या देता है ?"

उसने पर्स मे से दस का नोट निकालकर उसके हाथ मे दिया।

उसने नोट थाम लिया और चीखा, "यह काम दस-पाच रुपये का है। तू हमको फुद्दू बनाता है चल।" और उसका चौडा शिकजा उसकी बाह के चारो तरफ था।

"मेरी समझ मे नही आता, तुम डर क्यो रहे हो।" सुम्मी ने अग्रेजी मे कहा, "चलो, हम थाने चलते है।"

ओमी को भी लगा हा, इसमे डरने की क्या बात है।

वह चलने लगा।

पर कुछ ही क्षणो मे वह फिर घिर गया थाना, वेरीफिकेशन नाम •• पता उसका दफ्तर सुम्मी का कॉलेज उसकी पत्नी और अमर । एक क्षण के लिए उसके सामने कौधा दिल्ली का वह अखबार जो ऐसी घटनाए फोटो सहित छापता है और हजारो की सख्या मे बिकता है।

"सुनो !" वह उससे बोला, "भई पता भी तो चले आखिर तुम चाहते क्या हो ?"

"मैं कुछ नही जानता। चलो, थाने चलो दस रुपये देते हैं।" फिर उसने ओमी को जरा दूर घसीटा और धीरे से बोला, "सौ रुपये दो।"

"इतने तो इस समय मेरे पास नही है।"

"लाओ देखू।" उसने खुद ही ओमी का पर्स निकाल लिया।

खाली पर्स वापस पकडाते हुए वह बोला, "जाओ, चले जाओ, फिर कभी ऐसी हरकत न करना।"

दोनो धीरे-धीरे घसीटते हुए राजपथ पर आ गए।

सडक पर लगे लैम्प-पोस्ट की रोशनी मे दोनो ने एक-दूसरे को देखा और मुस्कराए।

"कितने रुपये गए ?"

"ज्यादा नही, तीस-पैंतीस होगे। पर · पर ··तुम रो क्यो रही थीं ?" और एकाएक ओमी ने मुडकर पीछे देखा।

सुम्मी हस दी, "क्यो डर रहे हो ? तुम्हे लग रहा है जैसे वह अभी भी पीछे-पीछे आ रहे है।"

"डर ही समझो।" उसने भी हसने की कोशिश की, "वे लोग अभी भी मुझे बुरी तरह घेरे हुए हैं। पर ··हा, तुम रो क्यो रही थी ?"

सुम्मी कुछ नही बोली। वह भी अपना प्रश्न जैसे भूल-सा गया। दोनो सिकुडे हुए सीधी सडक पर चल रहे थे।

"यह घटना तुम्हे कितने दिन याद रहेगी ?"

"कौन-सी ?" फिर ओमी को लगा, वह बडा बेकार-सा सवाल कर रहा है। सुम्मी ने उसी घटना के बारे मे ही तो पूछा है जो अभी-अभी घटी थी।

"याद तो शायद काफी दिन रहे, पर दो-एक दिन अच्छी तरह मथती रहेगी। फिर धीरे-धीरे मैं शायद इसके प्रति काफी तटस्थ हो जाऊगा। तब जब भी मुझे याद आएगी, ऐसा लगेगा जैसे यह घटना मेरे साथ नही किसी और के साथ घटी थी।"

·· ··

"क्या मैं अमर के बारे मे भी कभी ऐसा ही महसूस कर सकूगी !"

"कैसा ?"

"ऐसा ही।"

हवा के ठडे झोके के साथ बूदें पडने लगी। दोनो बचाव के लिए रेल भवन के बस-स्टॉप की ओर बढने लगे।

कीचड़

'बार' मे बैठे-बैठे हमे एकाएक रमन की याद आई। हमारी बातचीत अनेक मोडो से गुज़रती हुई रमन तक पहुची थी। हम साल मे एक-दो बार जब भी मिलते, बातचीत के अनेक पडावो को पार करते हुए रमन तक पहुच जाया करते। आज भी हम वही पहुच गए थे। पद्रह साल पहले हम तीनो कानपुर मे इकट्ठे थे। अब सीर्फ बीके है कानपुर मे, मैं हू दिल्ली मे और रमन है बम्बई मे।

मैंने कहा—'रमन एकदम गधा है।'

बीके ने कहा—'रमन एकदम बेवकूफ है।'

मैंने फिर कहा—'नालायक कही का। तीन-चार साल होने आए, एक चिट्ठी तक नही लिखी।'

बीके ने कहा—'ससुरा कही का। पता नही बम्बई मे कौन-सी झख मार रहा है। अब तो उसकी मुन्नी भी सयानी हो गई होगी। उल्लू को उसकी भी चिंता नही है।'

फिर हम दोनो ने एक साथ यह अनुभव किया कि बम्बई मे उसके नये घर का पता भी हमारे पास नही है। और हम लोगो ने एकाएक तय किया—चलो, उसके घर चला जाए। उसके बाप से मिलकर उसका पता पूछा जाए।

उस गली मे मुडते हुए मैने बीके से पूछा—'तुम इस तरफ कितने दिनो बाद आए हो?'

बीके ने मेरी तरफ देखा—'दिनो नही, बरसो बाद। इस शहर मे रहता ज़रूर हू पर इस तरफ तो बरसो से आना नही हुआ। और तुम ?'

'मैं ?' मुझे लगा मुझे इस गली मे आए सदिया गुज़र गई हैं। पन्द्रह साल के समय को मुडकर देखना मुझे एक गहरी अधेरी गुफा मे झाकने जैसा लगा।

हम लोग गली के अन्दर आ गए थे। पर जैसे-जैसे हम आगे बढ रहे थे, मेरी, शायद बीके की भी, पहचान उस गली से टूटती जा रही थी। पद्रह साल पहले

इस गली के एक-एक मकान, एक-एक दुकान, एक-एक नुक्कड पर हमारी पहचान की छाप लगी हुई थी।

मैंने उससे कहा—'रमन के पिता अपनी शाम एक मन्दिर मे गुज़ारा करते थे। आओ मन्दिर से उन्हे देखते चले।'

हम लोग वह मन्दिर ढूढने लगे। पर ढूढे कहा ? गली के दोनो ओर न वो छोटी-छोटी दुकानें थी, न वो चबूतरे, न वो नग-धडग लडके। हर चबूतरा, हर नुक्कड और हर खाली स्थान एक नये किस्म के रूप-रग मे बदल गया था। नई-नई दुकाने बन गई थी। उनमे कपडो के चमचमाते हुए थान करीने से सजे हुए थे। हर दुकान मे ट्यूब लाइट की रोशनी थी, पखे थे, कोकाकोला की बोतले थी।

और दुकानो के अन्दर बैठे हुए चेहरे भी बिल्कुल बदले हुए थे।

मुझे याद है कि ऊचे चबूतरे से होकर एक पतली-सी गली थी और उसके बाद मन्दिर था। रमन के पिता, पण्डित जी, शाम को उसी मन्दिर मे बैठकर अन्य अनेक पंडितो से देश मे युवको के गिरते चरित्र, नष्ट होती हुई भारतीय सस्कृति और ज्योतिष की तिथियो के अनुसार आने वाले वर्षो की महामारी, बाढ, अकाल और विश्वव्यापी युद्धो की चर्चा किया करते थे।

अब चबूतरा तो दुकानो मे बदल गया था। परन्तु चबूतरे तक जाने वाली सीढियो का अस्तित्व किसी प्रकार बचा हुआ था। उनकी मदद से हम उस मदिर की खोज मे सफल हो गए।

मैंने बीके से कहा—'ज़रा देखो, पडित जी अदर तो नही हैं।'

उसने लौटकर बताया कि पडित जी वहा नही है। परन्तु अदर अन्य पडितो की चर्चा उसी तरह चल रही है।

हम लोग रमन के घर की तरफ चल दिए।

हम दोनो ही चाहते थे कि यदि पडित जी से घर के बाहर ही भेट हो जाती । अच्छा था। शायद हम दोनो ही रमन के घर जाने से घबडा रहे थे। वह २।६८ भी अजीब थी। थोडी देर पहले हम दोनो ने बियर पी थी। पान खा लेने बावजूद हमे लग रहा था, हमारे मुह से बदबू आ रही है। और रमन के घर , पिता, चाचा, चाची तो मिलेगे ही, वे बच्चे भी मिलेंगे जो अब बच्चे नहीं रहे होगे।

एक मुश्किल और थी। हम दोनो की नजर बार-बार अपनी पैंटो की तरफ

जा रही थी। बाहर-बाहर से वापस आ गए तब तो ठीक है। पर यदि उन्होंने आग्रह किया और अन्दर जाकर सीलन-भरे कमरे मे चटाई पर बैठना पडा तो इन टाइट पैंटो के साथ हमारा क्या हाल होगा।

हमे वह छोटी गली मिल गई। उस गली को पहचानना और भी मुश्किल हो रहा था। उस छोटी गली के दोनो ओर की गदी दीवारे या दरवाजे, लगता था जैसे किमी जादुई करिश्मे से एकदम साफ-सुथरी दुकानो मे बदल गए थे। दीवारे तोडकर ये दुकाने कहा से निकल आई है, यह बडा अदभुत लग रहा था। मुझे याद आया कि उस छोटी-सी गली के सामने, जहा से वह दाई ओर को मुडती थी, कुम्हारो का एक हाता था। अब उस स्थान पर हमे एक जगमगाता हुआ बाजार नजर आ रहा था।

हम लोग बहुत शक और सकोच से उस गली मे घुसे। इन जगमगाती चीज़ो मे से रमन के घर के पुराने दरवाज़े को ढूढना अपने अन्दर के बीस वर्ष पुराने 'मैं' को ढूढने से ज्यादा मुश्किल दिखाई दे रहा था।

दरवाज़े के सामने खडे होकर हम दोनो थोडी देर मे आश्वस्त हुए कि यह वही दरवाज़ा ह। और धीरे-धीरे जानी-पहचानी शकले सामने आने लगी। चाचा, बिल्कुल वही चाचा—खडाऊ, यज्ञोपवीत, चंदन, गाठ लगी चोटी। सिर्फ दातो की गिनती मे कुछ कमी हुई थी और बालो की सफेदी बढी थी। चाची मे अधिक अन्तर नही आया था। वही मटमैली सफेद धोती, हाथ मे वही दो-दो काच की चूडिया, वैसा ही मुस्कराता हुआ उनका सावला चेहरा। लगता था कि समय उनके पास से बस उन्हे छूकर निकल गया है।

पडित जी घर पर नही थे। पता लगा वे ट्यूशन पढाने गए हे। ट्यूशन वाली बात सुनी तो पता नही कैसी कसमसाहट-सी महसूस हुई। पडित जी को हेड-मास्टरी से रिटायर हुए आठ-दस वर्ष हो गए है। पर यह ट्यूशन पढाना अभी तक उनके पीछे पडा हुआ था।

हम लोग अन्दर बुला लिए गए। हम लोग अपनी पैन्टो के कही से भी दरक जाने का खतरा झेलते हुए अन्दर आकर चटाई पर बैठ गए।

कुछ देर पहले तक हम महसूस कर रहे थे कि यह मुहल्ला बहुत बदल गया है। अन्दर आकर लगा, कुछ भी तो नही बदला है। जो कुछ भी बदला है वह सिर्फ बाहरी है। यहा तो वही चूल्हा, वही लकीर खिचा चौका, वही चटाई, वही

इस गली के एक-एक मकान, एक-एक दुकान, एक-एक नुक्कड पर हमारी पहचान की छाप लगी हुई थी ।

मैंने उससे कहा—'रमन के पिता अपनी शाम एक मन्दिर मे गुजारा करते थे । आओ मन्दिर से उन्हे देखते चले ।'

हम लोग वह मन्दिर ढूढने लगे । पर ढूढे कहा ? गली के दोनो ओर न वो छोटी-छोटी दुकाने थी, न वो चबूतरे, न वो नग-धडग लडके । हर चबूतरा, हर नुक्कड और हर खाली स्थान एक नये किस्म के रूप-रग मे बदल गया था । नई-नई दुकाने बन गई थी । उनमे कपडो के चमचमाते हुए थान करीने से सजे हुए थे । हर दुकान मे ट्यूब लाइट की रोशनी थी, पखे थे, कोकाकोला की बोतले थी ।

और दुकानो के अन्दर बैठे हुए चेहरे भी बिल्कुल बदले हुए थे ।

मुझे याद है कि ऊचे चबूतरे से होकर एक पतली-सी गली थी और उसके बाद मन्दिर था । रमन के पिता, पण्डित जी, शाम को उसी मन्दिर मे बैठकर अन्य अनेक पंडितो से देश मे युवको के गिरते चरित्र, नष्ट होती हुई भारतीय सस्कृति और ज्योतिष की तिथियो के अनुसार आने वाले वर्षो की महामारी, बाढ, अकाल और विश्वव्यापी युद्धो की चर्चा किया करते थे ।

अब चबूतरा तो दुकानो मे बदल गया था । परन्तु चबूतरे तक जाने वाली सीढियो का अस्तित्व किसी प्रकार बचा हुआ था । उनकी मदद से हम उस मदिर की खोज मे सफल हो गए ।

मैंने बीके से कहा—'ज़रा देखो, पडित जी अदर तो नही है ।'

उसने लौटकर बताया कि पडित जी वहा नही है । परन्तु अदर अन्य पडितो की चर्चा उसी तरह चल रही है ।

हम लोग रमन के घर की तरफ चल दिए ।

हम दोनो ही चाहते थे कि यदि पडित जी से घर के बाहर ही भेट हो जाती तो अच्छा था । शायद हम दोनो ही रमन के घर जाने से घबडा रहे थे । वह घबराहट भी अजीब थी । थोडी देर पहले हम दोनो ने बियर पी थी । पान खा लेने के बावजूद हमे लग रहा था, हमारे मुह से बदबू आ रही है । और रमन के घर मे पिता, चाचा, चाची तो मिलेंगे ही, वे बच्चे भी मिलेंगे जो अब बच्चे नही रहे होंगे ।

एक मुश्किल और थी । हम दोनो की नजर बार-बार अपनी पैंटो की तरफ

जा रही थी। बाहर-बाहर से वापस आ गए तब तो ठीक है। पर यदि उन्होंने आग्रह किया और अन्दर जाकर सीलन-भरे कमरे मे चटाई पर बैठना पडा तो इन टाइट पैंटो के साथ हमारा क्या हाल होगा।

हमे वह छोटी गली मिल गई। उस गली को पहचानना और भी मुश्किल हो रहा था। उस छोटी गली के दोनो ओर की गदी दीवारे या दरवाजे, लगता था जैसे किसी जादुई करिश्मे से एकदम साफ-सुथरी दुकानो मे बदल गए थे। दीवारें तोडकर ये दुकाने कहा से निकल आई है, यह बडा अदभुत लग रहा था। मुझे याद आया कि उस छोटी-सी गली के सामने, जहा से वह दाई ओर को मुडती थी, कुम्हारो का एक हाता था। अब उस स्थान पर हमे एक जगमगाता हुआ बाजार नज़र आ रहा था।

हम लोग बहुत शक और सकोच से उस गली मे घुसे। इन जगमगाती चीज़ों मे से रमन के घर के पुराने दरवाज़े को ढूढना अपने अन्दर के बीस वर्ष पुराने 'मैं' को ढूढने से ज्यादा मुश्किल दिखाई दे रहा था।

दरवाज़े के सामने खडे होकर हम दोनो थोडी देर मे आश्वस्त हुए कि यह वही दरवाजा है। और धीरे-धीरे जानी-पहचानी शकले सामने आने लगीं। चाचा, बिल्कुल वही चाचा—खडाऊ, यज्ञोपवीत, चंदन, गाठ लगी चोटी। सिर्फ दातो की गिनती मे कुछ कमी हुई थी और बालो की सफेदी बढी थी। चाची मे अधिक अन्तर नही आया था। वही मटमैली सफेद धोती, हाथ मे वही दो-दो काच की चूडिया, वैसा ही मुस्कराता हुआ उनका सावला चेहरा। लगता था कि समय उनके पास से बस उन्हे छूकर निकल गया है।

पडित जी घर पर नही थे। पता लगा वे ट्यूशन पढाने गए है। ट्यूशन वाली बात सुनी तो पता नहीं कैसी कसमसाहट-सी महसूस हुई। पडित जी को हेड-मास्टरी से रिटायर हुए आठ-दस वर्ष हो गए ह। पर यह ट्यूशन पढाना अभी तक उनके पीछे पडा हुआ था।

हम लोग अन्दर बुला लिए गए। हम लोग अपनी पैन्टो के वहीं से भी दरक जाने का खतरा झेलते हुए अन्दर आकर चटाई पर बैठ गए।

कुछ देर पहले तक हम महसूस कर रहे थे कि यह मुहल्ला बहुत बदल गया है। अन्दर आकर लगा, कुछ भी तो नहीं बदला है। जो कुछ भी बदला है वह सिर्फ बाहरी है। यहा तो वही चूल्हा, वही लकीरें खिचा चौका, वही चटाई, वही

पीतल के वर्तन, वही सीलन, वही ''वही ' वही'' सब कुछ वही।

वहा एक चीज नई भी थी।

एक कोने मे रखा हुआ टेवुल फैन हम सभी पर हवा फेंकने की भरसक कोशिश मे लगा हुआ था।

चाचा ने वात चलाई—'रमन की कोई चिट्ठी-विट्ठी आती है ?'

मैंने कहा—'मुझे पिछले तीन-चार साल से उसकी कोई चिट्ठी नही मिली। तीन साल पहले वम्वई गया था तो उसके घर भी गया था। वहा पता लगा कि वह अपनी खोली वेचकर कही और रहने चला गया है।'

वीके ने पूछा— आपके पास उसकी चिट्ठी आती है ?'

चाची वोली—'वह खुद तो नही लिखता। कभी-कभी मुन्नी लिख देती है। कुछ दिन पहले ही मुन्नी की चिट्ठी आई थी।'

हम रमन के वारे मे पूछते रहे कि वह वम्वई मे कहा है और क्या करता है। यह उस घर मे किसीको ठीक-ठीक पता नही था।

मुन्नी की चिट्ठी से हमने उसका पता नोट किया।

अव हमे लगा कि उठना चाहिए। हमारा काम तो हो गया। पर थोडी देर मे एक लडका गली की किसी चाय की दुकान से हमारे लिए चाय ले आया। दो पुराने प्याले, जिनके किनारे टूटे हुए थे और एक धुआ खाई केतली।

हम दोनो ने चाय पी।

चाचा वताने लगे—आगामी वर्ष वहुत सकट का है। ज्योतिष के अनुसार सभी ग्रहो की दशाए वदली हुई हैं। आगामी वर्ष मे वहुत उथल-पुथल होगी, महामारी फैलेगी, वाढें आएगी, युद्ध होगे, लाखो व्यक्ति काल के ग्रास होगे, विश्व के अनेक महत्वपूर्ण नेता मरेंगे, चारो तरफ अशान्ति और हाहाकार वढेगा।

हम दोनो उनकी वातें वडे ध्यान और चिन्ता से सुनने की मुद्रा वनाए वैठे थे। रमन के चाचा जी पण्डिताई करते है। हमे लग रहा था कि वे एक याद किए हुए पाठ की तरह सव कुछ वोल रहे है। वर्पानुवर्प अपने यजमानो के सामने यही सव कुछ वोलते हुए उन्हे हर वात पूरी तरह, पूरे विराम चिह्नो सहित याद हो गई थी। मुझे याद आया, सन् पचपन के आस-पास उन्होने मुझसे कहा था—सन् सत्तावन आ रहा है। सत्तावन का साल कभी खाली नही जाता। इस वर्प मे सारा ससार नप्ट होने की स्थिति मे आ जाएगा। तव मैंने डेढ-दो साल अन्दर ही अन्दर मृत्यु

की प्रतीक्षा करते हुए और समूल नष्ट हो जाने का अद्भुत रोमास झेलते हुए गुज़ारे थे।

परन्तु आज हम उनकी वाते ऐसे सुन रहे थे जैसे किसी मित्र के विवाह मे मत्र सुनते हैं। कहने वाला कहता है, सुनने वाले सुनते है और दोनो अपनी जगह पर अडिग रहते है।

इतने मे पण्डित जी आ गए। मै वमुश्किल अभी आधा ही उठा था कि उन्होने वाहर से कमरे मे आने वाला दरवाज़ा वन्द कर लिया। एक क्षण यह वात मेरी समझ मे नही आई और मैं भौचक्का-सा फिर वैठ गया। फिर मुझे एकाएक याद आया। वाहर के दरवाज़े और कमरे के दरवाजे के वीच नल है। वही जगह इस घर मे गुसल और पेशाव के लिए भी इस्तेमाल होती है।

कुछ देर मे पण्डित जी ने जनेऊ अन्दर सरकाते हुए दरवाजा खोला। इस वार मैं उठा नही। वीके भी नही उठा। दोनो ने वैठे-वैठे हाथ जोड दिए। वे हमारे पास आकर वैठ गए।

मैंने महसूस किया कि पण्डित जी वहुत वूढे हो गए है। नाम मात्र को कोई दात उनके मुह मे वचा था। रमन उनकी एकमात्र सतान है जो हज़ार मील दूर वैठा ज़िन्दगी से जूझ रहा है। पण्डित जी और हम एक-दूसरे को प्रश्नो से देख रहे थे। वे सोचते थे कि हम उसके वचपन के दोस्त हैं। हमे ज़रूर मालूम होगा कि वह वहा क्या करता है। हम सोच रहे थे कि पण्डित जी को क्या कुछ आभास है कि वह वहा क्या करता है। यदि इन्हे पता लगे तो क्या हो? क्योकि रमन तो वहा कुछ भी नही करता। और जो आदमी कुछ भी नही करता है वह क्या करता है इसको जानना वहुत वीभत्स होता है, और वहुत दहला देने वाला भी।

रमन को लेकर हम किसी अधे कुए मे जा गिरे थे। ऐसे मे मैंने उम्मीद की एक पतली डोर सभी के हाथ मे पकडाई।

मैंने कहा—'मैं अगले महीने वम्वई जाऊगा।'

वीके ने कहा—'मै भी चलूगा।'

और फिर हम दोनो ने कहा—'इस वार हम उसकी पूरी खोज-खवर लेकर आएगे।'

हम वाहर निकले तो देखा, इस वीच काफी पानी वरस गया है। गली कीचड से एकदम भर गई थी। अपने को वचाते हुए हम लोग किसी तरह वडी गली तक

आए। वहा भी काफी कीचड हो गया था। दोनो तरफ की दुकाने खूब जगमगा रही थी। दुकानदार पैर सिकोडे हुए अपनी गद्दियो पर बैठे हुए थे। लगभग सभी दुकानो पर ट्राज़िस्टर बज रहे थे। एक दुकान से दूसरी दुकान तक विविध भारती से सुनाया जाने वाला फिल्मी गीत पूरा का पूरा सुना जा सकता था।

पर गली मे तो बहुत कीचड था। हम दोनो के जूते बुरी तरह उसमे फच-फच कर रहे थे।

बीके बोला—'इस मुहल्ले का ऊपरी रग-ढग तो बहुत बदल गया है पर नीचे का कीचड जैसे का तैसा ही है।'

मैंने उसकी तरफ देखा। सोचा उससे पूछू —'क्या यह सिर्फ इस मुहल्ले की बात है ?'

पर मैंने कुछ कहा नही। मेरा पैर सडक पर बने एक गड्ढे मे चला गया था और कीचड मे पूरा जूता सन गया था।

हम दोनो ने बडी हिकारत से मुह बिचकाया और अपनी पैंटो के तग पायचो को ऊपर चढाने की कोशिश करते हुए कीचड मे से गुजरने लगे।

प्याले

कॉफी हाउस की खुली छत है।

इस समय चार कुर्सिया है। बीच मे मेज है। चार व्यक्ति है। सामने चार प्याले है। चारो प्यालो मे हॉट कॉफी है।

चार प्यालो की जगह यदि चार गिलास होते तो वे आपस मे टकराते, चियर्स करते और धूम-धडाके की बातचीत मे धीरे-धीरे उतर जाते। उस समय बातचीत का विषय ढूढना बिल्कुल मुश्किल नही होता। ऑटोमेटिक मशीनो से भरी जाने वाली ठडी पेय की बोतलो की तरह लबालब बातचीत आगे बढती चली जाती।

पर इस समय सिर्फ कॉफी के प्याले सामने रखे हुए है। शाम बहुत उदास है। खुली छत पर बैठे होने के बावजूद हवा बिल्कुल नही है। अजीब पिचपिची उमस महसूस हो रही है। सारा वातावरण एकदम थमा हुआ है। आज का 'इवनिंग न्यूज़' भी बहुत डल है। शहर मे कोई नई फिल्म भी रिलीज नही हुई है। इस बीच कोई सनसनीखेज़ हत्या भी नही हुई। दस-बीस लाख की कोई मज़ेदार धोखा-धडी भी नही हुई। कही कोई मिनिस्ट्री भी नही टूटी। शाम की अखबार मे एक ऐसे चुके हुए नेता के मरने की खबर है जिसके बारे मे यही नही मालूम था कि वह अभी तक जिन्दा था।

चारो प्याले भी चुप है। बीच-बीच मे वे उठते है, होठो तक लगते है और फिर प्लेट के पेट पर आ टिकते है। सुस्त-सुस्त-से वेटर इधर-उधर की मेज़ो पर पकौडो और बडो की प्लेटे रखते है। इतनी देर हो गई है, किसी वेटर का पैर नही फिसला है। कोई वेटर किसीसे टकराया नही है। प्लेटो और प्यालो के गिरने की कोई आवाज़ नही आई है।

तभी एक प्याला बोल पडता है—"नीना का ही कुछ हाल-चाल सुनाओ।"

इस बात ने भी कोई खास स्पन्दन नही पैदा किया है। नीना के साथ बनाने

लायक, इस भयानक वोरियत मे वातचीत करने लायक, कुछ नया घटा होगा ऐसा किसीको नही लगा है।

पर चौथा प्याला अपनी कुर्सी पर कुछ और पसर जाता है। सिगरेट के धुए के छल्ले वनाता हुआ वह वडे रहनुमाईअदाज़ मे वोलता है—"नीना ने शादी कर ली है।"

वाकी प्याले एकाएक खनखना उठते हैं। सभी चौथे प्याले को घूरने लगते हैं जो अभी भी उसी अदाज मे वैठा हुआ धुए के छल्ले वना रहा है।

सभी सोचते हैं—साला वेपर की उडा रहा है। और फिर अपनी-अपनी जगह पर स्थिर होने की कोशिश करते है।

चौथा प्याला फिर वोलता है—"जानते हो उसने किसमे शादी की है? एक वकील से, जिसकी तीन हजार रुपये महीने की प्रैक्टिस है।"

वाकी सभी एक वार फिर सोचते हैं कि इस वात को भी वेपर की कहकर उडा दिया जाए। पर अचरज की वात यह है कि चौथा प्याला नीना के वारे मे रेडियो रिपोर्ट की तरह धडाधड क्या वकता चला जा रहा है।

आखिर दूसरे प्याले से नही रहा जाता। वह चिढकर कहता है—"तुम उसकी शादी मे ज़रूर शामिल हुए होगे।"

दूसरे प्याले की इस वात पर सभी मुस्कराते हैं और सोचते हैं अव यह वात यही खत्म हो जाएगी। नीना की शादी वाली वात झूठी साबित हो जाएगी और वह वातचीत का विषय वनी रहेगी।

पर चौथा प्याला उसी सजीदगी से कहता है—"मैं शामिल तो नही हुआ पर जिन शामिल हुए लोगो ने मुझे वताया है वे पूरी तरह विश्वसनीय है। क्योकि उनमे से कोई भी हम लोगो की तरह लेखक नही है।"

अव वाकी तीनो प्याले थोडी-सी तिलमिलाहट के साथ ज्यादा सजग हो गए हैं। उन्होंने अपनी कोहनिया मेज़ पर टिका ली है।

और चौथा प्याला एकदम खामोश है।

चौथा प्याला खामोश है और वाकी तीनो प्यालो मे नीना की सोच घुलती चली जा रही है। वे लगातार उसीके वारे मे सोचे रहे है।

पहला प्याला सोच रहा है—नीना का रोमास शादी की मज़िल तक कैसे पहुच गया? रग तो उसने वहुतो पर चढाए, पर हर वार लगा यही था कि उसके

रग गहरे होते हुए भी कच्चे होते हे। जिस तेजो से वे चढते है उसी तेजी से उतर भी जाते है।

पहने प्याले की आखो मे एक-दूसरे से गडमड कितनी ही आकृतिया तैरने लगी है। उन आकृतियो मे गहरे रग की छविया भी है और उतरने रग के मटमैले धब्बे भी। उसे लगा उसने कई बार नीना को किसी ऊची मीनार की मजिल की ओर चढते देखा था। वह चढती जाती थी—चढती जाती थी। ऐसा लगता था कि वह अभी ऊपर पहुचकर गोल गुबद से लिपट जाएगी। पर तभी पता नही क्या होता था कि नीना बिल्कुल नीचे खडी दिखाई देती थी। उस समय उसकी आखो मे एक अजीब-सी खोज समाई रहती थी। उस खोज मे जो कुछ उसने खोया होता उसकी छाया नीचे दबती चली जाती और धीरे-धीरे मैला, फिर मटमैला, फिर सफेद होता हुआ एक और ही रग उभर आता। उस समय उसकी आखो मे झाकने से ऐसा लगता था कि उसकी आखो की यह खोज एकदम कुवारी है, एकदम पहली, एकदम मासूम।

"तुम्हे मालूम है, भूषण से उसका रोमास कैसे शुरू हुआ था?" दूसरा प्याला चौंककर पूछता है।

बाकी तीनो के सामने यह साफ नही हुआ कि वह किस भूषण की बात कर रहा ह। नीना को लोगो ने इतने आभूषणो से अलकृत देखा है कि कोई भूषण झटपट याद नही आता।

परन्तु दूसरा प्याला यह मानकर चलता है कि ये सब जानते होगे कि मैं किस भूषण की बात कर रहा हू।

वह कहता है—"नीना की मा ने एक बार अपने लिए अखबार मे एक विज्ञापन निकलवाया—४२ वर्ष की एक तलाकशुदा महिला को अपने लिए एक जीवन-साथी की जरूरत है। महिला एक अर्द्ध सरकारी सस्थान मे नौकरी करती है। वेतन लगभग सात सौ रुपये। इस पते पर पत्र-व्यवहार करें। भूषण साहब ने और तो सब ठीक पढा, बस ४२ को २२ पढ लिया। उसकी बीबी को मरे साल-भर हुआ था। एक दिन आप दिए पते पर जा पहुचे। इन्होने विज्ञापन की कटिंग नीना के सामने रखी तो उस औरत ने बडे अचरज से इनकी तरफ देखा और पूछा—आप मुझसे शादी करेगे। यह सुनकर भूषण बेहिसाब सकपकाया। बोला—यह इश्तहार आपने अपने लिए दिया था? नीना की मा हस पडी। बोली—लगता

है आपने इश्तहार ठीक से पढा नही। फिर से पढिए। भूषण पर जब ४२ और २२ का भेद ज़ाहिर हुआ तो बडा घबराया। पर नीना की मा ने उसकी सारी घबराहट दूर कर दी। बडे प्यार से उसे बैठाया, चाय पिलाई और उससे उसके बारे मे सब कुछ पूछ लिया। उन दिनो नीना बी० ए० मे पढती थी। नीना की मा जल्द से जल्द उसकी शादी कर देना चाहती थी। भूषण उसे जच गया। उसने भूषण और नीना के सम्बन्धो को विकसित हो जाने का पूरा मौका दिया। और यह रोमास दो-तीन साल तक चला।"

पहला प्याला पूछता है—"भूषण ने नीना से शादी क्यो नही कर ली ?"

"तुम बेवकूफ हो।" दूसरा प्याला बोला—"भूषण की दिलचस्पी न शादी मे थी, न २२ और ४२ साल की उम्र मे। उसकी दिलचस्पी सिर्फ सात सौ रुपये वाली नौकरी मे थी। उसकी यह दिलचस्पी बाद मे महिला कॉलेज की एक लेक्चरार से शादी करके पूरी हो गई।"

सभी प्यालो मे भूषण जैसी कुछ और शक्ले भी तैरने लगती हैं। एक-आध किस्सा तो सभी को याद है और इन सभी किस्सो के साथ लोगो ने अपने-आपको काफी जोडकर देखा है। पर चौथे प्याले की बात से सबका 'जुडना' कुछ चरमरा गया है।

पहला प्याला सोचता है, बडे मजे से सोचता है, जिस दिन उस वकील को नीना की गुज़री हुई जिन्दगी का हाल मालूम होगा उस दिन क्या होगा। उसके सामने नीना का एक चित्र खिच जाता है—सडक पर खडी हुई नीना, उखडे हुए बाल, थका हुआ चेहरा, भटका हुआ सारा शरीर, आस-पास से गुजरते हुए कितने लोग।

उसके मन की बात चौथा प्याला भाप लेता है। वह कहता है—"तुम लोग सोचते होगे कि जिस दिन वकील को यह बात मालूम होगी उस दिन नीना का क्या होगा। तो सुनो उसे सब बातो का पता लग चुका है।"

सब लोग उसे फिर घूरने लगते है। सब को फिर से एक बार लगता है कि वह बेपर की उडा रहा है। एकाएक सबको महसूस होता है कि उनके प्यालो मे कॉफी खत्म हो चुकी है। और उन्हे अचानक लगता है—इस मौसम मे एक-एक प्याला कॉफी और पी जा सकती है। यह काम भी चौथा प्याला करता है। वह वेटर को कॉफी लाने के लिए कहता है।

कॉफी से भरे प्याले आ जाने के बाद पता नही क्यो एक बार फिर से सभी

को महसूस होता हे कि आज का मौसम बहुत खराव है।

चौथा प्याला कॉफी सिप कर रहा है और वाकी प्याले उसे कनखियो से देख रहे हैं। कोई उससे यह नही कहता कि वह बात सुनाओ 'वह बात ''वह। सब को लगता है कि उस बात के वाद नीना प्रसंग की सभी समावनाए समाप्त हो जाएगी। और चौथा प्याला आज अपने-आपको हीरो महसूस कर रहा है। आज तक कॉफी हाउस की वातचीत का वह केन्द्र कभी नही बना। वह हमेशा श्रोता रहा है। आज वह वक्ता हे—ऐसा वक्ता कि उसीकी बात और वातो की लगाम थामकर आगे-आगे चलती है।

वह वोलना शुरू कर देता है। वाकी लोग, चाहने न चाहने के पासग मे झूलते हुए उसकी वात सुनने लगते है।

"नीना की शादी के वस दो दिन ही वाकी थे कि वकील साहव एक लम्वा लिफाफा लिए नीना के घर जा धमके। उसने कहा—मैं जरा नीना से एकान्त मे मिलना चाहता हू। फिर वह और नीना एक कमरे मे वद हो गए। उसने नीना के सामने वह लिफाफा खोलकर रख दिया। उसमे वहुत-से प्रेम-पत्र थे जो नीना ने किसीको लिखे थे।"

चौथा प्याला एक वार सभी की ओर देखता है। उसे यह देखकर अच्छा लगता है कि आगे की वात सुनने के लिए लोग उसकी तरफ मुह वाए ताक रहे है।

"पर नीना उससे जरा भी नही घवराई।" चौथा प्याला वडे नाटकीय अदाज मे पूछता है—"जानते हो उसने क्या कहा ? वह वोली—हा ये पत्र मेरे ही लिखे हुए हैं। ऐसे पत्र मैंने कुछ और लोगो को भी लिखे थे। आज-कल मे शायद वे भी आपके पास पहुच जाए। कमरे के वाहर नीना की मा की जान होठो तक आई हुई थी। उसे लग रहा था कि जव कमरा खुलेगा तो उससे एक महराती हुई वाढ वाहर निकलेगी और उसमे उसकी अदर-वाहर की सभी तैयारियां डूव जाएगी। पिर नीना ने वकील से कहा—आप चाहे तो यह रिश्ता तोड सकते है। मैं इसे भी सह लूगी। वकील कुछ देर नीना को देखता रहा फिर वोला—तुम इतना सव कैसे सह लेती हो वस और कुछ नही। दो दिन वाद उनकी शादी हो गई।"

एक वार सभी के मन मे उभरता है—फिर क्या हुआ ? तभी उन्हे लगता है यह जिज्ञासा विल्कुल वेकार है। फिर क्या होना है ? जो होना था वह हो गया। अव आगे जो कुछ होगा, उससे आगे होगा।

तीसरा प्याला वहुत कम वोला था—या विल्कुल वोला ही नही था। वह चौथे प्याले को घूरता है—"यदि सव कुछ वैसा ही हुआ है जैसा तुमने कहा है तो तुम्हारी वात सुनकर हम निराश हुए हे।"

निराश ! यह शव्द उछलकर सभी प्यालो मे आ गिरता है। और फिर कुछ देर तक मरी हुई मक्खी की तरह तल से लगी हुई कॉफी पर तैरता रहता है। फिर सव को महसूस होता है यह शव्द उनकी मनःस्थिति को व्यक्त करने के लिए वहुत सही नही है। परन्तु सभी को यह भी महसूस होता है कि इस समय की उनकी मनःस्थिति को व्यक्त करने के लिए किसी और शव्द की जरूरत है · सख्त जरूरत। पर वह शव्द कौन-सा है ? किसीको कुछ सूझना नही।

उमस और वढ गई हे। प्याले एकदम खाली पडे हैं। छत की कुर्सिया भी खाली होती चली जा रही है। वेटर उदास-उदास और थके-थके-से इधर-उधर घूम रहे है।

और सभी इस वात का इंतजार कर रहे है कि कोई कहे—आओ अव चलें।

घिरे हुए क्षण

दिलीप कपडे बदल चुका है, चाय पी चुका है और आराम कुर्सी पर बैठा अखबार पढ रहा है। वह नौकर से मोहनी के बारे मे पूछ चुका है, जवाब पा चुका है। वह सुबह दस बजे की निकली हुई है। इस बात को नौकर से पूछने का कोई अर्थ नही है। मोहनी घर से दस बजे निकली हो या बारह बजे, क्या फर्क पडता है ? और यदि कुछ पूछना ही हो तो कुछ दूसरी बाते पूछी जा सकती है, मोहनी आज कौन-से कपडे पहनकर गई है ? वह जिस दिन सफेद नायलोन की साडी के साथ चिकन का स्लीवलेस ब्लाउज़ पहनती है उस दिन उस दिन दिलीप को कुछ बेचैनी महसूस होने लगती है। इस ब्लाउज मे उसके वक्ष अपने जोडो पर साफ नजर आते है और ढलान से उतरते हुए उभार पर खुद उसकी नजरे बार-बार चढने-उतरने लगती है। हो सकता है वह वायल की साडी-ब्लाउज मे हो। हो सकता है वह कसी हुई सलवार-कमीज मे हो। वह समझता है कि मोहनी का शरीर अब सलवार-कमीज़ लायक नहीं रहा है। शादी से पहले वह इन कपडो मे बहुत जचती थी, बहुत स्मार्ट लगती थी। अब उसका पृष्ठ भाग कुछ ज्यादा ही बडा हो गया है। अब सलवार-कमीज़ पहनकर जब वह चलती है तो कमर से हिलता हुआ यह अग कैसी हरकत करने लगता है।

वह अखबार पढ रहा है। मोहनी के बारे मे सोच रहा है, वह रेडियो स्टेशन के कारीडोर से मित्तल के साथ खिलखिलाती हुई निकल रही है • वह लोक-जीवन के कार्यालय मे सम्पादक के केबिन मे बैठी है वह तेरह नम्बर की बस से आ रही है ··।

मोहनी आ गई है, पसीने से तर-बतर। उसने अपना पर्स और दुपट्टा पलग पर फेक दिया है। तौलिया उठाया है और बाथरूम की ओर चली गई है वह बाथरूम से वापस आ गई है। तौलिये से गर्दन और मुह पोछते हुए वह सामने की आराम कुर्सी पर बैठ गई है।

दोनो चुप है।

मोहनी नौकर को आवाज़ देती है, "गोपाल, ज़रा दो गिलास शर्बत तो बना ला वर्फ है कि नही नही है तो दस पैसे की ले आ।"

वह उठती है। रेगुलेटर को किरररर से घुमाकर फुल पर कर देती है। पखा झरररर की आवाज़ से तेज़ हो उठता है। वह अपनी कुर्सी खिसकाकर पखे के नीचे ले आती है। दोनो हाथो से शरीर से चिपकी हुई कमीज़ को गले के नीचे से वाहर की ओर खीचती है और गर्दन पखे की सिधाई मे उठा देती है।

दिलीप चोर निगाहो से उसके उभरे वक्ष की ओर देखता है। ऐसे, जैसे सामने वैठी हुई स्त्री उसकी पत्नी नही है। फिर उसे याद आ जाती है, आखे, मित्तल की, सम्पादक की · उसकी · उसकी ··। ये सभी आखें उसे वही चिपकी हुई नज़र आती है।

मोहनी वता रही है, "ये रेडियो वाले अव वहुत तग करने लगे हैं। रिहर्सल ठीक ग्यारह वजे से था। मित्तल साहव आए साढे वारह वजे। जव उन्होंने रिहर्सल शुरू किया तो देखा चोपडा गायव है। पहले डायरेक्टर का पता नही था, अव हीरो लापता था। इतने मे लच का वक्त हो गया। रिहर्सल शुरू हुआ ढाई वजे से और पाच उसीमे वज गए। और आज ही लोक-जीवन वालो को वह लेख देना था। वहा से भागी तो वडी मुश्किल से छ के पहले वहा पहुची । कनाट प्लेस से आदमी या तो चार-साढे चार के पहले भाग आए या फिर नौ के वाद आए। वीच मेतो वस मिलती ही नही।"

मोहनी घर के काम-काज मे लग गई और दिलीप के सामने एक क्षण धिर आया है।

तव उनकी शादी नही हुई थी।

दफ्तर के पास के एक वैंक के अडरग्राउड रेस्ट्रा मे वे वैठे थे और मोहनी कह रही थी, "दिलीप, भई, आज ज्यादा देर नही रुकूगी। पता है, कल दस वजे घर पहुची थी। डैडी मम्मी पर खूव झल्ला रहे थे और मम्मी वेचारी की हालत खराव हो रही थी। मैंने दोनो का मूड देखा तो लगा, वच्चू आज खैर नही। पर तुम जानते हो मेरे पास वहानो के वावन पत्ते हैं और जव देखती हू कि इनमे से कोई कामयाव नही होगा कि वस तुरुप चाल चलती हू सव चित्त हो जाते है।"

और मोहनी कितने ज़ोर से हस पडी थी।

दिलीप ने पूछा था, "तो कौन-सी तुरुप चाल मारी तुमने, जरा मै भी सुनू।"

मोहनी ने बताया था, "डैडी की एक कमजोरी मै अच्छी तरह जानती हू। किसीकी बीमारी का समाचार उन्हे बुरी तरह द्रवित कर देता है। मैंने ऐसा मुह बनाया जैसे दुनिया का दु ख-दर्द देखकर मैं बहुत बेचैन हू। और जल्दी ही बोधि-सत्व ग्रहण करने जा रही हू।"

वह कह रही थी, "डैडी कुछ पूछे, इससे पहले ही मैने कहा, डैडी वो मेरी सहेली है न, शीला। विचारी के साथ आज बडी बुरी हुई। उसने तो बस सबको परेशान करके रख दिया। आज हमारी शाम को एक्स्ट्रा क्लास थी। क्लास मे ही उसे दौरा पड गया। उसकी आखे चढ गई और बत्तीसी जुड गई। सभी लोग बहुत घबडा गए। उसे सम्भाले कौन ? क्लास मे बस हम तीन लडकिया है। एक उस दिन आई नही थी। बस सब कुछ मुझे ही करना पडा। आप तो जानते ही है शीला हॉस्टल मे रहती है। उसका यहा कोई है ही नही। बस आप कुछ पूछिए नही, कितनी परेशानी उठानी पडी। उसे हास्पिटल पहुचाया। आठ-साढे आठ बजे जब उसकी तबीयत कुछ ठीक हुई, तो मैं वहा से चली।"

"फिर ?" उसने पूछा था।

"फिर क्या डैडी जो पहले जमी हुई बरफ लग रहे थे, पिघलकर पानी हो गए थे।"

मोहनी फिर जोर से हसी थी।

उसने कहा था, "बहाने बनाने मे तो तुम पूरी उस्ताद हो।"

दिलीप के चारो ओर यह क्षण बिखर गया है। जैसे वह उसे तेज़ काटे की तरह चुभ रहा है। वह उसे झटक देना चाहता है 'वह उसे झटक देना चाहता है। पर वह क्षण है कि पिघला हुआ पारा है, जिसे वह एक तरफ से हटाता है तो वह दूसरी तरफ से उसके पास सिमट आता है।

यह क्षण मोहनी को भी घेर लेता है।

वह दिलीप की जेब से पैसे निकाल रही है। सब्ज़ीवाला दरवाजे पर खडा है और बराबर आवाज़ दे रहा है। पर मोहनी को कागजो के अन्दर से यह क्या मिल गया है ? ये सिनेमा के टिकट के दो अद्धे हैं। मोहनी उन्हे जल्दी-जल्दी अपनी बाई मुट्ठी मे दबा लेती है। वह सब्ज़ीवाले को पैसे देकर लौटती है। दिलीप बाथरूम

मे नहा रहा है। वह अपनी मुट्ठी खोलती है। कल शाम के शो के दो टिकट, रीगल। वह याद करने लगती है। आजकल रीगल मे कौन-सी पिक्चर लगी है? याद की इस कोशिश को वह झटक देती है। उसे याद आता है, दिलीप रात को दस बजे घर आया था *और कह रहा था, पटेल भवन मे एक मीटिंग थी।

मोहनी घिर गई है।

यूनिवर्सिटी मे कान्वोकेशन होने के कारण उसका कॉलिज बन्द था, पर दिलीप का दफ्तर खुला था। दिन-भर साथ रहने का सुनहरी मौका था, क्योकि वह कॉलेज का बहाना करके घर से आ सकती थी। पर दिलीप? उसकी तो एक भी छुट्टी बाकी नही थी।

लेकिन उसने कहा था, "घबडाओ मत। एक तिकडम भिडाता हू।"

बुद्ध जयन्ती पार्क के एक पेड की छाया मे लेटे-लेटे उसने दिलीप से पूछा था, "आखिर यह तो बताओ कि आज की छुट्टी तुमने मारी किस तरह?"

दिलीप ने बहुत गभीर होकर कहा था, "मैडम, यह छुट्टी नही है। आय एम ऑन ड्यूटी। दफ्तर मे मेरी हाजिरी लगी है। और मैं दफ्तर के काम से ही बाहर हू।"

"वह किस तरह?"

"सुनो और दाद दो मुझे।" उसने कहा था, "देखो मेरा बॉस है तो आई० ए० एस० का आफीसर। पर साहित्य-वाहित्य मे भी कुछ शौक रखता है। मैं कुछ पढना-लिखता हू यह वह जानता है। इसलिए जरा मेरी कद्र भी करता है। एक दिन मुझे उसकी एक कमजोरी का पता लगा। उसे सभाओ-सम्मेलनो की अध्यक्षता करने का बहुत शौक है। आज सुबह मैने उससे कहा, साहब, सी० डी० कॉलेज यूनियन वाले एक कल्चरल प्रोग्राम करना चाहते है। वे चाहते हैं कि आप उस कार्यक्रम की अध्यक्षता करे। इस काम के लिए वे लोग मेरे पास कई बार आ चुके हैं। क्या आप थोडा-सा समय निकाल पाएगे?"

साहब थोडा गम्भीर हो गए। बोले, "कब है उनका प्रोग्राम?"

मैंने कहा, "साहब, वो तो आपकी सुविधानुसार डेट फिक्स करेगे। जब आपके पास समय खाली हो। आपके पास समय निकलना भी तो बहुत मुश्किल है।"

साहब बोले, "हा, इस हफ्ते मे तो बहुत बिजी हू। अगले हफ्ते मे कोई दिन तय कर लो।"

मैंने कहा, "ठीक है साहब · मैंने उन्हे आज उत्तर देने के लिए कहा था। कहिए तो उनके कॉलेज जाकर सब बात निश्चित कर आऊं। उन्हे बहुत-सी तैयारी भी करनी होगी।"

साहब बोले, "हा हा, चले जाओ।"

"और सुनो।" दिलीप ने उससे कहा था, "उस कॉलेज की यूनियन का चेयरमैन अपना दोस्त है। वहा का इतजाम हो ही जाएगा। न भी हो पाया तो क्या चिंता है। कह दूगा, साहब उस कॉलेज का प्रिंसिपल बीमार पड गया है। इस कारण उनका कार्यक्रम एक-दो हफ्तो के लिए स्थगित हो गया है।"

"बहाने बनाना तो कोई तुमसे सीखे।" उसने हसते हुए कहा था।

क्षणो से घिरी हुई मोहनी को उन दो अद्धो मे से एक का स्पर्श दूसरे से भिन्न लग रहा है।

दिलीप पूछ रहा है, "मोहनी, आज का तुम्हारा क्या प्रोग्राम है ?" वह शीशे के सामने खडा अपनी टाई की नॉट ठीक कर रहा है। गोपाल ने उसका लच बॉक्स तैयार करके रख दिया है।

मोहनी लिखने की मेज पर व्यस्त है। उसी व्यस्तता मे बोल रही है, "यह अनुवाद पूरा करके दोपहर के बाद निकलूगी। सोचती हू, आज रस्तोगी से भी मिलती आऊ। पिछले सप्ताह उसका पत्र आया था। 'गर्भिणी की देखभाल' शीर्षक से वह मुझसे एक छोटी पुस्तक लिखवाना चाहता है, मालूम है न तुम्हे ?"

दिलीप को याद आता है, मोहनी ने एक बार इस बात का जिक्र किया था। पर रस्तोगी का नाम सुनकर उसका मुह कडुवा हो गया है। यह आदमी उसे बिलकुल अच्छा नही लगता। गोल-मटोल, चीनियो जैसा। हमेशा मुह फुलाए रहता है। थोडे-से पैसे क्या कमा लिए है, समझता है दुनिया का हर आदमी उसका नौकर है।

मोहनी कह रही है, "हफ्ते-भर की मेहनत है। एक मुश्त ढाई-तीन सौ रुपये मिल जाएगे।"

दिलीप कहने की जगह पर कुछ उगल देना चाहता है, "पर तुम्हे उसके पास जाने की क्या जरूरत है ? उसे चिट्ठी लिखकर सब बात पक्की कर लो न ।"

"चिट्ठियो से यह बात पक्की हो सकती है ?" मोहनी दिलीप की आखो मे

देखती है, "तुम तो जानते ही हो वह कैसा आदमी है।"

दिलीप के मन मे उमड उठता है—इसीलिए तो तुम्हारा उससे मिलना मुझे पसन्द नही।

"तो फिर शाम को कनाट प्लेस पर कही मिल जाना।" वह इस तरह कहता है, जैसे कुछ कह नही रहा है, अपने को बटोर रहा है।

"आज नही।" मोहनी बडे बधे स्वर मे कह रही है, "आज शाम को मैं मीता के घर जाऊगी। मैंने उससे कह रखा है।"

दिलीप बस पर बैठा दफ्तर की ओर उडा जा रहा है। खिडकी मे से होकर कितने क्षण उसके मुह पर फडफडा रहे है।

क्षण है कि फडफडाते ही रहते है। वे गौरैया नही कि घटो आसमान मे उडती रहे। वे तो सिर्फ मुर्गिया है या बत्तखे, जो फडफड करके उडती हैं और फिर स्थिर हो जाती है। पर जब उडती है तो उनके परो से तेज आवाज फूटती है।

दिलीप कितने दिनो से आगरा चलने की बात कह रहा है—ताज एक्सप्रेस से सुबह चले, उस दिन वही रहे, दूसरे दिन शाम को उसी गाडी से वापस आ जाए। मोहनी है कि टालती ही जा रही है। इन दिनो उसके रेडियो रिहर्सल बडे जोर-शोर से चल रहे हे। दिलीप को लग रहा है, मोहनी कही खो गई है। चोपडा, मित्तल, शर्मा—पता नही किन-किनके स्पर्श का बोध उसे मोहनी के स्पर्श मे से होने लगता है। कभी-कभी उसे एक बडा रोमाटिक ख्याल आता है, वह मोहनी को कही भगा ले जाए। जैसे वह उसकी पत्नी नही है। वह एक परायी औरत है—कितने ही लोगो से घिरी हुई एक परायी औरत।

"देखो मेरी आखिरी छुट्टी बची है।" दिलीप आराम कुर्सी पर लेटा पत्रिका के पन्ने उलटता हुआ मोहनी की ओर देख रहा है। वह आयने के सामने खडी मुह पर कोल्ड क्रीम लगा रही है। ट्यूब लाइट का अक्स आदमकद आयने पर साफ दिखाई दे रहा है। दिलीप की नजर वहा से दौडती है। और मोहनी के सिर, ब्लाउज, उसमे से झाकती हुई ब्रेसरीज की पट्टियो और साडी पर से फिसलती हुई नीचे तक चली जाती है।

मोहनी की ओर से कोई रिसपान्स नही है।

दिलीप को लग रहा है, मोहनी अपने सौन्दर्य के प्रति दिन पर दिन अधिक सतर्क

होती जा रही है।

"हुजूर, मैने कुछ कहा है। आपने सुना नही क्या ?"

....

"हा तुम्हारी आखिरी छुट्टी वची है।" मोहनी उसकी ओर पलट आती है। क्रीम के कारण उसका चेहरा वडा लसीला लग रहा है।

दिलीप वहुत सावधान होकर उसकी अगली हरकत की प्रतीक्षा कर रहा है। इस वाक्य से वह मोहनी के रिसपान्स का अनुमान नही लगा पाया है।

मोहनी सीधे उसकी कुर्सी तक चली आई है और दोनो हाथ उसकी कुर्सी की वाहो पर टिकाकर और उसपर अपना पूरा वोझ डालकर दिलीप पर झुक आई है।

"वोलो।"

क्रीम की गध दिलीप के नथुनो मे प्रविष्ट हो रही है। मोहनी पर उसका प्यार उमड आया है। उसका यह कार्य उसे अपनी अपेक्षा से वहुत अधिक लग रहा है।

उसने उसे अपनी वाहो मे घेर लिया है।

"मै कह रहा था कि वस एक ही कैजुअल लीव वची है। आओ, उसका उपयोग कर ले। कल आगरा चलती हो ? परसो इतवार है उस दिन शाम तक आ जाएगे।"

"ना वावा।" वह उसी तरह झुकी हुई कह रही है, "कल प्ले का फाइनल रिहर्सल है। न गई तो मित्तल वहुत चिल्लाएगा अगले हफ्ते चलेगे।"

क्षण का चमगादड फडफडाने लगा है।

"चिल्लाने दो उसे।" दिलीप की आवाज मे खीझ, अधिकार और अनुनय एक साथ घुल-मिल गए है, "गोपाल के हाथ उसे एक चिट भिजवा देना 'लिख देना तवीयत ठीक नही है या कुछ भी लिख देना वहाने वनाने मे तो तुम पूरी उस्ताद हो।"

क्षण का सैलाव उमड आया है।

मोहनी दिलीप की आखो मे आखें डालकर वडी शरारत से मुस्करा रही है, "उनमे तो तुम भी कुछ कम नही हो।"

दिलीप ज़ोर से हस देता है। वह इस उमडे सैलाव मे अपने को डूवने नह

देगा। मुस्कराती हुई और क्रीम की गध छोडती हुई मोहनी आज उसे बहुत ही प्यारी और मादक लग रही है वह उसे कसकर भीच लेता है। उसे लगता है, उसकी कुर्सी, कुर्सी नही है। वह मनु की मत्स्य नौका है जो इस उमडे हुए सैलाव के थपेडो पर तैरती जा रही है।

शोर

जब वे अन्दर आए, तो उन्हे महसूस हुआ कि वहा उतना अन्धेरा नही है, जितना हमेशा हुआ करता था और खास बात यह थी कि सामने वाली वह जगह, जो गाव के कुएं के आकार की बनी थी और जिसके अन्दर बैठकर कभी कोई ग्रामोफोन पर अग्रेजी धुने बजाया करता था, आज आबाद थी। वहा चार-पाच हिप्पी खडे थे। उनके हाथो मे वाद्य यन्त्र थे। ऐसा लग रहा था कि आर्केस्ट्रा कुछ देर पहले ही पूरे यौवन पर था और अब किसी नई धुन की तैयारी हो रही थी। उस जगह ज्यादा रोशनी का होना जहा उन्हे खला था, वही वह रौनक उन्हे अच्छी लगी थी।

पहले वे बाईं तरफ की मेज की ओर बढे। पर उन्हे लगा कि इस तरह वे आर्केस्ट्रा के बिल्कुल सामने होगे और आने-जानेवाले सभी उन्हे देखेगे। वे दाहिनी ओर मुड गए और सामने की केबिननुमा जगह की तरफ बढ गए, जिन्हे टाट के पार्टीशनो द्वारा अलग-अलग किया गया था।

उस तरफ बढते हुए मर्द की नज़र उसके साथवाली केबिन की तरफ चली गई। वहा उसे एक परिचित आकार का आभास हुआ। अरे, वह तो नरुला था। उसके सामने बैठी लडकी उसे नजर नही आई। पर क्षण-भर मे ही उसने अदाजा लगा लिया—वह शमा होगी।

मर्द जरा दाहिने दब गया। उसे लगा, नरुला ने उसे देखा नही है। वह नरुला की तरफ पीठ करके बैठ गया औरत सामने बैठ गई। मर्द को उस हॉल की ज्यादा रोशनी का फिर एहसास हुआ—नही तो वह औरत को अपनी बगल मे बिठा लेता।

आर्केस्ट्रा पर तेज धुन बजने लगी थी।

मर्द ने देखा—औरत उसे एकटक देख रही थी।

वह मुस्कराया।

फिर उसने अपनी गर्दन आगे बढाकर औरत से कहा, "जानती हो, मेरे पीछे की तरफ कौन बैठा है ?"

औरत ने आखे चौडी करके टाट के पर्दे के उस ओर झाकना चाहा, उस तरफ आकृति होने का आभास तो उसे लगा होगा।

नरूला की आवाज बहुत साफ सुनाई दे रही थी। वह किसी मजाहिया ड्रामे का एक हिस्सा सुना रहा था और लडकी (शायद शमा) बार-बार हस रही थी।

मर्द ने धीरे से कहा, "यह नरूला है—थियेटर यूनिट वाला।"

औरत एकाएक घबरा उठी, "चलो यहा से चले। यह आदमी मुझे जरा भी अच्छा नही लगता।"

आर्केस्ट्रा के ड्रम पर तेज थाप पडने लगी दूसरे यन्त्र भी झनझना उठे। सब कुछ शोर मे डूब गया।

मर्द ने शब्दो से कम और मुद्रा से अधिक बोलकर कहा, "परवाह न करो। उसने हमे देखा नही हे।" पर उसे लगा औरत बहुत घबरा रही है। वेटर को उसने चीज, सैंडविच और कॉफी लाने को कहा।

वह बोली, "आओ कही और चले।"

"अब कहा जाएगे," मर्द बोला, "दफ्तर छूट चुके हैं। बाहर बहुत भीड होगी। किस-किसकी आख से बचते फिरेगे।"

उसे फिर लगा, औरत घबरा रही है।

"तुम तो किसीसे डरती नही। आज तुम्हे इतना डर क्यो लग रहा है ?"

उसने देखा, औरत के चेहरे पर कुछ पुरतापन आ गया हे। वह बोली, "मुझे यह जगह ही अच्छी नही लगती। रेस्त्रा हे या अधेरी गुफा। जबर्दस्ती का गाव बना रखा है। क्या गाव ऐसा ही होता हे। मुझे यहा की हर चीज डरावनी लगती है और यहा आज शोर कितना हे ?"

आर्केस्ट्रा के यन्त्रो के साथ शायद हिप्पियो के गाने की आवाज भी आने लगी थी।

वह सैंडविच खाने लगा। और उसे लगा, औरत कुछ खा नही रही है उसे एकटक देख रही है।

"खाओ ना।"

औरत ने मुस्कराने की कोशिश की और छुरी से सैंडविच काटने लगी।

'गाव' मे आने से पहले मर्द ने महसूस किया था कि उसे भूख लगी है। बाहर सडक पर औरत का इतजार करते हुए उसने दस पैसे के भुने चने लेकर खाए थे।

औरत को कुछ न खाते देखकर उसे कोफ्त हुई। उसकी प्लेट मे सैंडविच और उसका कटा टुकडा उसी तरह पडा था। और वह उसे टुकुर-टुकुर ताक रही थी।

"तुम कुछ खाती क्यो नही ?"

"तुम खाओ ना···"

"मै तो खा ही रहा हू। तुम क्यो नही खाती ?"

"मुझे भूख नही है।"

"नही खाती तो मत खाओ।" मर्द झुझलाया और उसने औरत की प्लेट मे पडी सैंडविच को अपनी प्लेट मे सरका लिया।

"तुम जब भी मेरे साथ आती हो, कुछ भी नही खाती। देखो, तुम्हारा कॉफी का प्याला भी पूरा भरा हुआ है।"

औरत ने प्याले की तरफ देखा। ऐस्प्रेसो कॉफी की झाग नीचे बैठ चुकी थी। उसने प्याला उठाकर एक 'सिप' लिया।

"क्या यह जिन्दगी ऐसे ही गुजरेगी ?" औरत बोली।

कॉफी पीते हुए मर्द ने प्याला रखकर औरत की तरफ देखा।

आर्केस्ट्रा का शोर एकदम तेज़ हो उठा।

दोनो एक-दूसरे की तरफ देख रहे थे। दोनो कुछ बोले नही। शोर इतना था कि कुछ बोला ही नही जा रहा था।

"यह जिन्दगी और किस तरह गुजर सकती है ?" मर्द बोला।

पता नही औरत ने मर्द की बात सुनी या नही, बस वह उसे देखती रही। मर्द को भी पता नही था कि औरत ने उसकी बात सुनी है या नही। पर वह महसूस कर रहा था कि उसने औरत की बात का उत्तर दे दिया है।

कुछ देर तक कोई कुछ नही बोला।

"क्या ऐसा नही हो सकता ··?"

"कैसा ?"

औरत अपनी अधूरी बात पूरी नही कर रही थी।

"बोलो न,·· क्या नही हो सकता ?"

वह कुछ बोल नहीं रही थी। बस उसे देखे जा रही थी।

फिर उसने अपनी गर्दन आगे बढाकर औरत से कहा, "जानती हो, मेरे पीछे की तरफ कौन बैठा है ?"

औरत ने आखे चौडी करके टाट के पर्दे के उस ओर झाकना चाहा, उस तरफ आकृति होने का आभास तो उसे लगा होगा।

नरूला की आवाज बहुत साफ सुनाई दे रही थी। वह किसी मजाहिया ड्रामे का एक हिस्सा सुना रहा था और लडकी (शायद शमा) बार-बार हस रही थी।

मर्द ने धीरे से कहा, "यह नरूला है—थियेटर यूनिट वाला।"

औरत एकाएक घबरा उठी, "चलो यहा से चले। यह आदमी मुझे जरा भी अच्छा नही लगता।"

आर्केस्ट्रा के ड्रम पर तेज थाप पडने लगी दूसरे यन्त्र भी झनझना उठे। सब कुछ शोर मे डूब गया।

मर्द ने शब्दो से कम और मुद्रा से अधिक बोलकर कहा, "परवाह न करो। उसने हमे देखा नही है।" पर उसे लगा औरत बहुत घबरा रही है। वेटर को उसने चीज, सैंडविच और कॉफी लाने को कहा।

वह बोली, "आओ कही और चले।"

"अब कहा जाएगे," मर्द बोला, "दफ्तर छूट चुके हैं। बाहर बहुत भीड होगी। किस-किसकी आख से बचते फिरेगे।"

उसे फिर लगा, औरत घबरा रही है।

"तुम तो किसीसे डरती नही। आज तुम्हे इतना डर क्यो लग रहा है ?"

उसने देखा, औरत के चेहरे पर कुछ पुख्तापन आ गया है। वह बोली, "मुझे यह जगह ही अच्छी नही लगती। रेस्त्रा है या अधेरी गुफा। जबर्दस्ती का गाव बना रखा है। क्या गाव ऐसा ही होता है। मुझे यहा की हर चीज डरावनी लगती है ··और यहा आज शोर कितना है ?"

आर्केस्ट्रा के यन्त्रो के साथ शायद हिप्पियो के गाने की आवाज भी आने लगी थी।

वह सैंडविच खाने लगा। और उसे लगा, औरत कुछ खा नही रही है उसे एकटक देख रही है।

"खाओ ना।"

औरत ने मुस्कराने की कोशिश की और छुरी से सैंडविच काटने लगी।

'गाव' मे आने से पहले मर्द ने महसूस किया था कि उसे भूख लगी है। वाहर सडक पर औरत का इतजार करते हुए उसने दस पैसे के भुने चने लेकर खाए थे।

औरत को कुछ न खाते देखकर उसे कोफ्त हुई। उसकी प्लेट मे सैंडविच और उसका कटा टुकडा उसी तरह पडा था। और वह उसे टुकुर-टुकुर ताक रही थी।

"तुम कुछ खाती क्यो नही ?"

"तुम खाओ ना ··"

"मै तो खा ही रहा हू। तुम क्यो नही खाती ?"

"मुझे भूख नही है।"

"नही खाती तो मत खाओ।" मर्द झुझलाया और उसने औरत की प्लेट मे पडी सैंडविच को अपनी प्लेट मे सरका लिया।

"तुम जव भी मेरे साथ आती हो, कुछ भी नही खाती। देखो, तुम्हारा कॉफी का प्याला भी पूरा भरा हुआ है।"

औरत ने प्याले की तरफ देखा। ऐस्प्रेसो कॉफी की झाग नीचे बैठ चुकी थी। उसने प्याला उठाकर एक 'सिप' लिया।

"क्या यह जिन्दगी ऐसे ही गुज़रेगी ?" औरत वोली।

कॉफी पीते हुए मर्द ने प्याला रखकर औरत की तरफ देखा।

आर्केस्ट्रा का शोर एकदम तेज हो उठा।

दोनो एक-दूसरे की तरफ देख रहे थे। दोनो कुछ वोले नही। शोर इतना था कि कुछ वोला ही नही जा रहा था।

"यह जिन्दगी और किस तरह गुजर सकती है ?" मर्द वोला।

पता नही औरत ने मर्द की वात सुनी या नही, वस वह उसे देखती रही। मर्द को भी पता नही था कि औरत ने उसकी वात सुनी है या नही। पर वह महसूस कर रहा था कि उसने औरत की वात का उत्तर दे दिया है।

कुछ देर तक कोई कुछ नही वोला।

"क्या ऐसा नही हो सकता ?"

"कैसा ?"

औरत अपनी अधूरी वात पूरी नही कर रही थी।

"वोलो न, क्या नही हो सकता ?"

वह कुछ वोल नही रही थी। वस उसे देखे जा रही थी।

मर्द कॉफी पीने लगा।

पीछे से नरूला और लडकी की आवाज आ रही थी—बहुत धीमी-धीमी।

और आर्केस्ट्रा भी धीरे-धीरे बज रहा था।

"क्या मैं तुम्हे पा नही सकती ?"

मर्द उसे एकटक देखने लगा।

"जितना पा चुकी हो, क्या उससे ज्यादा पाना चाहती हो ?"

"क्या इतना पाना काफी है ? प्यास मे तडपते हुए के लिए आधा घूट पानी।"

"इससे ज्यादा और क्या हो सकता है ?"

मर्द के यह कहते-कहते आर्केस्ट्रा की आवाज तेज हो चुकी थी।

"क्या यह नही हो सकता कि •?" औरत ने फिर बात अधूरी छोड दी। उसके होठ बार-बार इस तरह हरकत करने लगे, जैसे वह कुछ निगल रही थी। वह बार-बार आखे मिचका रही थी।

आर्केस्ट्रा के यन्त्र दनदनाकर बज रहे थे। सारा वातावरण शोर से झन-झना उठा था।

"आगे क्यो नही बोलती। क्या नही हो सकता •?"

औरत कुछ बोल नही रही थी। बस कुछ निगल रही थी और आखे मिच-मिचा रही थी।

"अच्छा, मै बताता हू," मर्द बोला, "तुम शायद यह कहना चाहती हो कि क्या हम शादी नही कर सकते ?"

औरत बिना किसी प्रतिक्रिया के उसे देखती रही।

"यह नही ? अच्छा तो तुम शायद यह कहना चाहती हो कि क्या मैं तुम्हे किसी दूसरे देश मे भगाकर नही ले जा सकता, जहा तुम्हारा पति हमारा पीछा न कर सके।"

औरत कुछ बोली नही। उसी तरह कुछ निगलती रही और आखे झपकाती रही।

"यह भी नही ? अच्छा तो तुम शायद यह कहना चाहती हो कि क्या हम दोनो जहर नही खा सकते ?"

औरत थोडा-सा कसमसाई।

"मैं मरना चाहती हू, पर एकदम नही। क्या कोई ऐसा जहर नही जिसे

खाकर मैं धीरे-धीरे मरू। किसीको पता भी न लगे कि मै जहर खाकर मरी हू।"

"है," मर्द मुस्कराया, "दाल-रोटी खाती रहो। इसीको खाते-खाते एक दिन मर जाओगी।"

"तुम मुझे बुजदिल समझते हो ?"

"नही 'अपने-आपको तुमसे ज्यादा बुजदिल समझता हू।"

मर्द ने देखा, औरत के प्याले मे तीन-चौथाई से ज्यादा कॉफी भरी है।

"इसे तो पियो, पैसे बरबाद करने से क्या फायदा।"

औरत ने प्याला उठाकर मुह से लगा लिया। मर्द ने अपने प्याले का आखिरी घूट भरा।

आर्केस्ट्रा जोर-जोर से दनदनाने लगा।

औरत के अन्दर से फ्लेश की तरह गुजरा, उसकी बिटिया ने कहा था (मम्मी, दफ्तर से लौटते समय ऊन जरूर लेती आना।) सुपर बाजार और जनपथ की ऊन से भरी दुकाने उसके इर्द-गिर्द हो आई और वह तिलमिलाने लगी।

"कुछ समझ मे नही आता कि क्या हो सकता है।" औरत बोली—"पर मुझसे इस तरह जिया नही जाता।"

हिप्पी जोर-जोर से गा रहे थे। मर्द उधर देखने लगा। वाद्य यन्त्र बजाते हुए वे नाच रहे थे। बढी हुई दाढिया, मटमैले-उलझे बाल, गदे कपडे—तीन लडके, दो लडकिया।

बीच-बीच मे उनकी किलकारी गूज रही थी।

"सुनो " मर्द बोला, "उस दिन तुम टेलीफोन पर कह रही थी। बिटिया को तुम अपनी मा के पास छोड दोगी फिर ।"

"फि फिर क्या ? आगे तुम सोचो।"

"मै सोचू ?" मर्द ने सोचा, वह सोचने की कोशिश कर रहा है पर वह कुछ सोच नही पा रहा है। उसकी सोच मे बार-बार जो बात आ रही है, वह उसकी हिप पॉकेट मे पडा हुआ पर्स है और उस पर्स मे दस का इकलौता नोट है। और वह सोचता है कि यहा का बिल चुकाने के बाद उसकी जेब मे बस दो-तीन रुपये ही रह जाएगे। और वह सोचता है, कल से उधार मागने का चक्कर शुरू हो जाएगा।

औरत ने दूसरी ओर मुह घुमा लिया था।

आर्केस्ट्रा चुप था।

दो जोडे हिप्पी कमर मे हाथ डाले नाच रहे थे। एक हिप्पी दोनो हाथ ऊपर उठाकर झूम रहा था।

पीछे की केबिन मे नरूला और शमा भी चुपचाप बैठे थे।

औरत मर्द की ओर देखने लगी। वह देखती जा रही थी। जैसे देखती-देखती बोल रही थी। बार-बार एक ही बात बोले जा रही थी।

हिप्पियो ने अपने यत्र फिर सभाल लिए और आर्केस्ट्रा कानो को फाड देने वाली आवाज मे बजने लगा।

मर्द बोल रहा था, "सुनो कुछ भी नही हो सकता। हम जैसे जी रहे है, वैसे ही जिएगे। इसमे हम कोई फर्क नही ला सकते।"

ड्रम पर थाप इतनी तेज पड रही थी कि मर्द की समझ मे नही आया कि औरत ने उसकी बात सुनी है या नही। उसे लगा, उसने अपनी बात कह दी है। औरत के सुनने या ना सुनने से उसका कोई सरोकार नही है। औरत उसे उसी तरह देखे जा रही थी, पर अब वह देखते हुए बोल नही रही थी। देखते हुए कुछ सुन रही थी। कुछ निगल रही थी।

मर्द ने देखा, औरत की कॉफी का प्याला अभी भी आधा भरा था।

औरत भी प्याले की तरफ देखने लगी। फिर उसने प्याला उठाया और सारी कॉफी एक घूट मे पी गई।

तेज़-तेज बजता आर्केस्ट्रा धीरे-धीरे मद्धिम पडने लगा।

दोनो चुप बैठे थे। दोनो को लग रहा था, कोई चीज बडी तेजी से इधर से उधर दौड रही है। दौडती हुई चीज न पकडी जा पा रही थी, न पहचानी जा पा रही थी।

आर्केस्ट्रा रुक गया था। हिप्पी वही जमीन पर टागे फैलाकर बैठ गए थे।

पिछली केबिन से नरूला और शमा की कोई आवाज नही आ रही थी।

'गाव' पूस की रात की तरह एकदम चुप था।

दोनो एक-दूसरे की तरफ देख रहे थे।

उन्हे लग रहा था—चारो तरफ बेहिसाब शोर फैला हुआ है।

●●●

मोहकमसिंह ने उनकी राय मान ली । उसी दिन वे अपने विश्वस्त साथियो के सहित सिरोही की ओर रवाना हो गये । कष्ट और अनेक आपदाओ के झेलते हुए वे सिरोही के महाराव के समक्ष गुप्त रूप से प्रस्तुत हुए ।

महाराव वैरीसाल ने दुर्गादास का हार्दिक स्वागत किया । उन्हे आलिगन मे आबद्ध करके कहा, "जोधपुर का राज्य कुल आपका सदा कृतज्ञ रहेगा । हमारी तो यह आशा है कि भविष्य मे आप यदि उनके शरीर की चमडी की जूती मे बना कर पहनना चाहेंगे तो वे सहर्ष आपकी बात स्वीकार करेंगे ।"

"महाराव, यह मेरा कर्तव्य है । स्वर्गीय महाराजा दुर्गादास जैसे छोटे व्यक्ति पर अत्यधिक भरोसा रखते थे । आज वे हमारे बीच नही है पर जहा कही भी उनकी आत्मा है, वह मुझसे प्रसन्न रहे यही मेरी इच्छा है । मुझे नमकहराम और देशद्रोही न समझे । महाराव जी, आज क्षत्रियो को सगठित होकर मुगल शासन के खिलाफ उठना है । मैं आपके पास बडी आशाए लेकर आया हूं । आपकी छत्र छाया मे मै अजीतसिंह जी का पालन-पोषण करना चाहता हूं ।"

महाराव वैरीशाल किंचित आकुल स्वर मे बोले, "कोई बात नही राठोड जी, पर यहा महाराजा अधिक सुरक्षित नही रह सकते । मै महाराजा को अत्यन्त सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देता हू ।"

'कहा ?"

"कालिंद्री गाव मे ।"

"वहा कौन है ?"

"वहा मेरी भुआ आनदकु वर बाई सा है ।"

"लेकिन वहा महाराजा की सुरक्षा कैसे हो सकती है ?" दुर्गादास ने शका प्रकट की ।

महाराव वैरीशाली ने एक बार इधर-उधर चहलकदमी की ।

गभीर मुसकान अपने होठो पर थिरकाते हुए वे बोले, "कदाचित आपको इसका ज्ञान नही है कि महाराव अखेराज की पुत्री आनदकुवर बाई सा का ब्याह स्वर्गीय महाराजा श्री जसवतसिंह जी के साथ हुआ था। इस रिश्ते से वह महाराजा की माँ हुई।"

दुर्गादास का चेहरा फूल सा खिल उठा। उनके निस्तेज मुख पर सहस्र सूरज चमक उठे। वे बोले, "हमे वही भेज दिया जाय। जोधपुर का राजवश आपका सदा आभारी रहेगा।"

दुर्गादास इधर रात-दिवस अथक यात्री की भाति चले जा रहे थे। उन्हे शका बनी रहती थी कि किसी भी क्षण बालक महाराजा को मृत्यु अपने विकराल पजो मे दबोच सकती है। उनका कोई भी गतव्य नही। कोई ठहराव नही। चैरेवति ··चैरेवति। सिर्फ चलना······ सिर्फ चलना।

कालिन्द्री गाव मे जाकार दुर्गादास ने अपना परिचय और वैरीसाल जी का सदेश आनदकुवर बाई सा को देते हुए कहा, "ये महाराज सा आपके कुल-दीपक की बुझती हुई लौ है। अनेक झझाओ से घिरा हुआ यह दीपक है। अब मैं इसे आपकी शरण मे लाया हू। आपके आचल का सम्बल इन्हे अब चाहिए।"

आनदकुवर ने उस फूल से मृदुल और आकर्षक शिशु को गोद मे लेकर चूमा। ममता के पावन चुम्बन वर्षण से आनदकुवर सा की ममता जाग्रत हो गयी। भावतिरेक स्वर मे वह बोली, "इसकी रक्षा मैं करूगी, यह मेरा लाल है, राठोड जी यह मेरा लाल है।"

उसने तुरन्त अपने विश्वासी पुष्करणा पुरोहित जयदेव को बुलाया।

पुरोहित ने हाथ जोड़ कर कहा, "क्या हुक्म है बाई सा?"

"देखो पुरोहित जी, यह कुवर मेरा अपना लाल है। बादशाह औरगजेब की कुदृष्टि इस पर लगी हुई है। मैं चाहती हूं कि आप इ

अपने बेटे की तरह पाले । इसके रहस्य का पता किसे भी न चले ।"

"जो हुक्म ! आप निश्चित रहे, मैं अपने जीते जी इन्हें किसी प्रकार की आच नहीं आने दूगा ।"

जयदेव अजीतसिंह जी को अपने घर ले गया । वीरवर दुर्गादास वहां छद्मभेष मे रहने लगे। एकात मे वे कभी-कभी अधीर हो जाते थे । उन्हें प्रतीत होता था कि उसका जीवन केवल कर्तव्यो से भाराक्रात हैं । कर्तव्य के अतिरिक्त वे कोई भी उत्तरदायित्व नही निभा पाते हैं । उनकी पत्नी और उनके पुत्र ! वे कभी-कभी अपने परिवार की मधुर स्मृति मे खोकर विचलित हो जाते थे ।

फिर वे पहरो प्रकृति की गोद मे बसे हुए इस सुरम्य स्थल के अवलोकन मे व्यस्त रहते थे । घाटियो के मौन अचल मे वे भटका करते थे ।

आज वे प्रात काल ही उधर निकल गये ।

सूर्य की ताजा किरणे चोटियो को चूम रही थीं । पवन के शीतल झोके चल रहे थे ।

अप्रत्याशित उन्हे कुछ मुगल सैनिक दृष्टिगोचर हुए । दुर्गादास आकुल हो उठे । सत्वरता से डग भरते हुए वे उन सैनिको के समक्ष गये । सैनिको ने उन्हे सर्वथा किसान समझा । एक सैनिक ने पूछा, "भाई,हम तुम्हे मु हमागा ईनाम देंगे अगर हमे एक बात बता दो तो ?"

दुर्गादास खिसिया कर बोले, "कौनसी बात सिपाही जी ?"

"यहा महाराजा यशवन्तसिंह जी के कु वर अजीतसिंह जी रहते हैं । वे कहा रहते हैं, इसका पता बतादो ।"

"मुझे क्या ईनाम मिलेगा ?"

सैनिक का उत्साह बढ गया । वह प्रसन्नता भरे स्वर मे बोला, "हम यह हार देंगे । एक थैली मोहरो की देंगे ।"

दुर्गादास एक पल के लिए उन्हे देखते रहे । फिर बोले, "पहले

ने उन्हे इस पहाडी घाटी के उस पार जो सबसे ऊची चोटी दिखलाथी
डती है,उस पर सूरज को मुह मे डाल्ते हुए देखा था और रात को चाँद
तारो के साथ क्रीडा करते हुए पाया ।''

"क्या वकते हो ?" सैनिक ने डाट वतायी ।

''माई-बाप ठीक कह रहा हू । वह बालक वडा अद्भुत है ।
आप इसे ऐसे नही पकड सकते । मेरी मानो,एक वडा सा जाल वनवाइए,
उसे सारे गाव पर डळवाइए । फिर ।

"यह पागल लगता है ।''

"एकदम पागल, चलो–चले ।''

सैनिक चल पडे ।

दुर्गादास छोटे रास्ते से सीधा आनदकुवर के पास पहुँचे । बोले,
राणी सा मुगल सैनिक महाराजा को खोजते हुए यहा आ गये है ।
मेरा दिल धडक रहा है ।"

''यह अच्छा नही हुआ ।'' शका प्रकट की राणी जी ने ।

"लेकिन कही पुरोहित जी ने प्रलोभन और भय मे आकर कुछ
कह दिया तो ?"

''ऐसा नही हो सकता । दुर्गादास जी, जयदेव पुष्करणा
ब्राह्मण है । वेद और धर्म का ज्ञाता । उसने हमारा पीढी-दर पीढी
नमक खाया है। श्रेष्ठ ब्राह्मण रक्त मे नमकहरामी नही आ सकती । —
फिर भी आप वहा जाकर उन्हे सावधान कर दीजिए ।''

दुर्गादास पवन-वेग से उधर भागे । जयदेव को सारी स्थिति से
अवगत कराते हुए वे विनीत स्वर मे वोले, ''पडित जी, राठोड राज्य
कुल गौरव का यह अतिम चिन्ह है । इसकी रक्षा करके आप न केवल
मुझ पर ही उपकार करेगे वरन समस्त राठोड जाति पर उपकार
करेंगे ।''

''राठोड जी, आप किसी प्रकार की चिंता न करें । मैं अपने

प्राण दे दू गा पर महाराजा का एक रोम भी खडित नही होने दू गा।' उसके स्वर मे दृढता थी ।

उधर मुगल सैनिक एक-एक घर मे जा-जाकर अजीतसिंह जी को खोज रहे थे । बादशाह ने हुक्म जारी कर दिया था कि किसी भी तरह महाराजा और दुर्गादास को हमारे हुजूर मे पेश करो । " सैनिक रात-दिन इसी प्रयास मे सलग्न थे ।

सैनिक अत मे पडित के घर आ पहुँचे । द्वार पर दुर्गादा छद्मभेष मे बैठे ही थे । समीप ही पृथ्वी पर उन्होने अपनी तलवार गा रखी थी ।

"यह किस का घर है ?" सैनिक ने पूछा ।

दुर्गादास बीच मे ही बोल पडे, "जी माई बाप, यह घर मेरा है ।"

जयदेव ने उन्हे डाटते हुए कहा, सिपाही जी यह पैला (पागल है । आप इसकी बात पर जरा भी गौर न कीजिए ।" यह घर मेरा है । मेरा नाम पडित जयदेव है । मै पुजारी हूँ । पुरोहित हूँ ।"

"तुम्हारे घर मे कितने बच्चे हैं ?"

"दो ।"

"वे कहा है ?"

"भीतर भोजन कर रहे है ।"

"हम उन्हे देखना चाहते हैं ।"

"शौक से देखिए ।"

एक मुगल सैनिक घर के भीतर घुसा उसने देखा कि दो बालक जनेऊ पहने हुए साथ-साथ भोजन कर रहे ह ।

सैनिक ने अधिकार पूर्ण स्वर मे पूछा, "ये दोनो बच्चे तुम्हारे हैं, सच-सच कहना ।"

"जी हुजूर ।" अत्यन्त विनम्रता से पुरोहित बोला, "नही-नही,

मेरे नही हैं, ये दोनो परम पिता परमात्मा के हे । खुदा के हैं ।"

सैनिक जैसे आये थे, वैसे ही चले गये ।

दुर्गादास भावविह्वल होकर पुरोहित के गले मिल गये । बोले, एक बार एक पुरोहित ने मेवाड की एकता और भाई-भाई के वैमनस्य को मिटाने के लिए अपने वक्ष मे छुरा भोक कर आत्माहुति दी थी । और आज एक पुरोहित ने अपने धर्म की चिंता न करते हुए राठोड कुल के सूर्य को अस्त होने से बचाया है । विप्रवर ! आपकी इस महत्ती कृपा को राठोड कभी नही भूल सकते । राठोड इस पुष्करणा ब्राह्मण के त्याग को स्वर्णाक्षरो मे लिख कर रखेंगे ।

आनदकुंवर भी आ गयी थी । उसने आते ही पूछा, "क्या हुआ राठोड जी ?"

"महाराजा की रक्षा हो गयी ।"

जयदेव को धर्मान्धो ने न्यात से बाहर कर दिया । उसने कोई परवाह नही की । अतिथि की रक्षा से न धर्म श्रेष्ठ है और न जाति ।

दुर्गादास ने जयदेव की चरण–धूलि को अपने सिर पर लगाया और कहा, "हम लोग आज ही मेवाड जा रहे हैं । अब यहा रहना खतरे मे खाली नही है । मुगल सेना रात-दिन हमारा पीछा कर रही है । आपके हम सदा कृतज्ञ रहेंगे । महाराजा की सार-सभाल अब आपको करनी है ।"

जयदेव ने विश्वास पूर्वक कहा, 'आप निश्चित रहिए दुर्गादास जी, अपन प्राण रहते हुए मैं महाराजा पर किसी तरह की आच नही आने दूगा । इन पर अपना सर्वस्व बलिदान कर दूगा । आप निश्चित होकर जाइए और स्वतन्त्रता की ज्योति जलाइए ।"

दुर्गादास के जीवन मे फिर वही यात्रा । चरैवेति ....
चरैवेति ...

८

छप्पन पहाड मे महाराजा राजसिंह जी के परामर्श से राठ वीर दुर्गादास छिप गये । पहाडो के बीच उस महान सेनानी ने अत्य कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत किया । राणा जी उन्हे निरन्तर सहायता पहुँच रहे ।

औरगजेब का पत्र राणा जी को मिला । बादशाह ने एक ब फिर महाराजा और राठोड दुर्गादास की माग की । हिन्दू धर्म प्रि राणा जी ने औरगजेब की बात को सुना-अनसुना कर दिया ।

इस पर औरगजेब ने मेवाड पर आक्रमण करने की घोषणा कर दी वीरवर दुर्गादास और सोनिग सरदार ने राणा जी के साथ युद्ध कर के बारे मे परामर्श किया । तुरन्त राठोड दुर्गादास ने यत्र-तत्र-सर्व विस्तृत देशभक्त राठोडो को आह्वान किया । सभी वीर तुरन्त एकत्रि हो गये । दुर्गादास ने अपने विचार व्यक्त करते हुए विनम्र शब्दो कहा, "हम शाही सेना से सीधा युद्ध नही कर पायेंगे । उनके पा असख्य सैनिक व तोपखाना है । विलायती अफसर है । ऐसी स्थिति मे हमे पहाडों मे छुप कर लडना चाहिए ।"

दीर्घकालीन इस बैठक के पश्चात सर्व सम्मति से यह निर्णय

लिया गया कि हम पहाडो मे छिप कर लडेंगे । राणा जी अपने सरदारो व सैनिको के साथ पहाडो मे चले गये । दुर्गादास जी अपने साथी सोनिग के सग मुगल-सेना पर लुक छिप कर आक्रमण करते थे और उनकी रसद लूट कर पुन पहाडो मे चले जाते थे ।

उदयपुर पर मुगल-सेना का अधिकार हो गया । उन्होने वहाँ के मदिर तोडे और प्रजा को सताया । ·· फिर शाहज़ादा अकबर सैन्य सचालन के लिए वहा रह गया । इधर अवसर मिलते ही राजपूत सेना मुगल सेना पर अचानक टूट पडती थी । मुगल सेना अप्रत्याशित आक्रमण से विचलित हो जाती और उनमे हाहाकार मच जाता फलस्वरूप औरगजेब ने शाहज़ादे अकबर की जगह शाहज़ादे आज़म को उस ओर भेजा ।

"शाहज़ादा अकबर मारवाड जा रहा है ।" यह समाचार दुर्गादास को उसके एक विश्वासी साथी ने आकर दिया, "वह अपमान की आग मे जला हुआ है ।"

दुर्गादास ने दृढता से कहा, "इसकी चिता न करे ! आप अपने चद सैनिको को मारवाड की ओर रवाना करें ! राठोडो से कहे कि दुर्गादास राठोड ने आपसे प्रार्थना की है कि आप मुगल सेना पर छुप-छुप कर घातक आक्रमण करे । सीधी लडाई न लडे ।"

राठोड ने मनन्त मुगल-सेना को लूटना आरभ कर दिया । उन दिनो दुर्गादास कई-कई राते सो नही पाते थे । सिर्फ महाराजा के लिए लडना, भागना और अपने आपको छुपाना ! न खाने की सुध और न ठहरने की चिता ! सिर्फ शत्रु दल का दमन ! इधर राणा जी की विष द्वारा मृत्यु ! जयसिह जी का महाराणा बनना ।

मुगल सेना दिन प्रति दिन और बडी सख्या मे आने लगी । अत मे चद राठोड और सिसोदियो ने गुप्त मत्रणा करके एक नया निर्णय लिया ।

राणा जी ने कहा, "औरगजेब हमे सदा नीति से पराजित करता आया हैं । हमे भी नीति से कुछ नया गुल खिलाना चाहिए ।"

सरदार सोनिग ने राणा जी की बात का समर्थन करते हुए निवेदन किया, "एकलिग दीवाण ठीक फरमाते है । हमे छल-प्रपच से मुगलो को हराना चाहिए ।"

राठोड दुर्गादास ने कहा, "क्यो नही हम शाहजादे मुअज्जम को अपनी ओर मिलाले ।"

"दुर्गादास जी का कहना सोलह आने सच है ।" सरदार चूडावत ने कहा ।

"फिर कौन यह काम करेगा ?"

काफी वाद-विवाद के बाद यह निश्चय किया गया कि देबारी के समीप उदयसागर पर ठहरे हुए मुअज्जम से राव केशरीसिह चौहान, चूंडावत रत्नसिह, सोनिग और राठोड दुर्गादास मिले ।

सभी सरदार मुअज्जम के पास गये । मेल-मिलाप की बात शुरू हुई । मुअज्जम की माता नवाब बाई ने उसे इसके लिए मना कर दिया । उसने अपने पुत्र को लिखा-राजपूत तुम्हे बरगला रहे है । वे आलमपनाह की ताकत को कम करके उनकी लाठी उनकी भैस करना चाहते हैं । इसलिए तुम खूब सावधान रहना । समझे ।" इससे दुर्गादास और राणा जी हताश नही हुए । वे अपने प्रयत्न मे लगे रहे ।

रात्रि के निस्तब्ध पहर मे मसाल के क्षीण आलोक मे राणा जयसिह जी ने दुर्गादास से कहा, "राठोड जी! हमारी समझ मे अब एक ही बात आती है कि हम औरगजेब के संगठन को तोडे । उसके शक्ति के स्रोतो मे फूट पैदा करके उसकी ताकत को बाट दे ।"

"पर राणा जी, वह अत्यन्त चतुर और सजग है । वह हमारी दाल नही गलने देगा ।"

"अब हमारी मूंछ का चावल तभी रह सकता है जब हम किसी

हजादे को अपनी ओर मिला ले ।"

"आप आज्ञा दे तो मै एक बार शाहजादे अकबर से भेट करू ।
ीलवाडे मे तह्वरखा के साथ रह रहा है । ...आपको विश्वास
हमारा वार खाली नही जायेगा ? हमे अपने काम मे सफलता
ी ?" दुर्गादास ने पूछा ।

"मुझे पूर्ण विश्वास है । भगवान एकलिंग हम सब का कल्याण
।"

"फिर मैं जाता हूँ । मेरे साथ चूडावत रत्नसिह, सोनिग जी
प्रमुख सरदार रहेगे ।"

दुर्गादास के प्रतिनिधित्व मे यह दल शाहजादे अकबर के पास
ा । अकबर ने उनका भव्य-स्वागत किया । आने का आशय पूछा ।
दुर्गादास ने कहा, "शाहजादे साहब, हम आपकी सेवा मे इसलिए
र हुए है कि हम सब आपकी आधीनता स्वीकार करना चाहते
—...आपके अब्बाजान लगातार राजपूतो से लडते रहने से अपने
को निर्बल कर रहे है । हम चाहते है, आप इस नाजुक परिस्थिति
लाभ उठाये । हम सब आपके साथ है ।"

"मै आपके कहने का मतलब नही समझा ?"

"मतलब साफ है ।" दुर्गादास बोले, "हम आपको दिल्ली का
शाह बनाना चाहते है । आपके पूर्वजो ने सदा ताकत के बल
शाहत पायी है ।"

"लेकिन यह कैसे मुमकिन हो सकता है ?"

"एकदम मुमकिन हो सकता है । ..हम सिर्फ एक ही बात
हते है—राणा जी को अपने परगने दिये जाये और महाराजा अजीतसिंह
जोधपुर का राज्य ।... आपको हम सब राजपूत वचन देते है कि
ग रहते हुए हम आपका साथ नही छोडेगे ।"

शाहजादे अकबर के समक्ष स्वर्णिम भविष्य साकार हो उठा ।